कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

सुलभ-साहित्यमाला

जैनेन्द्र-साहित्य

(दूसरा भाग)

परख-स्पर्द्धा

२
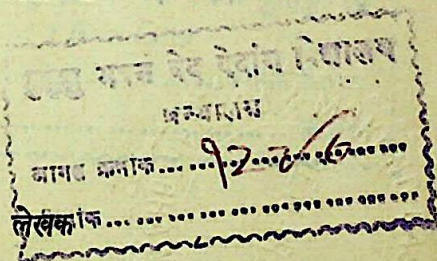
श्री जैनेन्द्रकुमार

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई ४

तीसरी आवृत्ति

1929

१५००

मुद्रक—
रामकृष्ण दास
बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी प्रेस, बनारस।

लेखकके कुछ शब्द

इस किताबके बारेमें कुछ शब्द मुझे कहने हैं। खुद किताबसे शायद यें शब्द ज़्यादा क़ीमती हों। इसलिए ज़्यादा सतर्क होकर और ज़रा निश्चयसे मैं उन्हें कहूँगा।

मैंने इसमें काफ़ी स्वतन्त्रतासे काम लिया है। पर, विश्वास है, उसका दुरुपयोग नहीं किया। जो दुरुपयोग नहीं करता उसके हाथमें मैं ज़्यादेसे ज़्यादे स्वतंत्रता देनेसे नहीं डरता। जो जानता है, स्वतन्त्रता बड़ी क़ीमती चीज़ है, उसका अपव्यय और उसका कदर्य उपयोग करना मानों उसकी हत्या करना है, वह स्वतन्त्रता अपनायेगा तो उसे कोई नहीं टोक सकेगा। मैं यही कहता हूँ।

क्या कहूँ और कैसे कहूँ,—इन दोनों बातोंमें मैंने किसी नियमको सामने नहीं रक्खा है। हाँ लेखकके दायित्वको और स्वतन्त्रताके मूल्यको प्रत्येक क्षण सामने रक्खा है। मैंने सदा ध्यान रक्खा है, जो दूँ उसमें अपनेको धोखा न दूँ, और दुनियाको धोखा न दूँ। लेखकका काम बड़ी जोखमका है, मैं समझता हूँ, इस किताबमें मैं उसे कहीं नहीं भूला हूँ।

न भाषाका शिकंजा है, न भावका। दोनों किसी कोडके नियमोंमें बँधकर नहीं रह सकते। जिसे बढ़ना है, वैसी कोई भी चीज शिकंजेमें कसी नहीं रह सकती। शिकंजेमें कस दोगे तो वह नहीं बढ़ेगी, लुंज रह जायगी,—हम उसीको सुन्दरता मानने लग जायँ तो बात दूसरी। पर, दुनियाकी स्पर्द्धा और दौड़में वह कहींकी नहीं रह सकती। जैसे चीनी स्त्रियोंके पैर। हिन्दी-भाषा-भाषियों और भाषा-लेखकोंको यह सत्य, पूरे हर्षसे और बिना ईर्ष्याके, मान लेना और अपना लेना चाहिए। भाषाका, दुनियाका हित इसीमें है।

उपन्यासमें जैसी दुनिया है वैसी ही चित्रित नहीं होती। दुनियाका कुछ उठा हुआ, उन्नत, कल्पित रूप चित्रित किया जाता है। वह उपन्यास किसी कामका नहीं, जो इतिहासकी तरह घटनाओंका बखान कर जाता है। कामसे मतलब, वह दुनियाको आगे बढ़ाने और बढ़नेमें ज़रा मदद नहीं देता। क्योंकि न वह इतिहास होता है, न उपन्यास ही। इतिहासका अपना मूल्य है। वह विश्वकी प्रग-

तिके मार्गका नक़शा हमारे सामने रखता जाता है। इसी तरह साहित्यके हर 'प्रकार'का अपना मूल्य है। उपन्यासका काम है, कुछ आगेकी,—भविष्यकी संभावनाओंकी ज़रा झाँकी दिखाना। और जो कुछ अब है, उसकी तह हमारे सामने खोलकर रख देना। उपन्यास एक नये, अजीब ही ढङ्गसे रँगे और उपादेय जीवनका चित्र हमारे सामने रखता है। जीवनके साधारण कृत्य और उलझी गुत्थियोंको सुलझाकर और खोल-खोलकर रख देता है। उपन्यास, इस तरह, सत्यमें स्वप्नकी पुट देकर, वास्तवमें कल्पना मिलाकर, व्यवहारसे आदर्शका साम्य और सामञ्जस्य स्थापित कर, और वर्तमानपर भविष्यका रँग चढ़ाकर जीवनका वह रूप पेश करता है जो जीवनसे मिलता जुलता है, फिर भी अनोखा है; जिससे मनोरंजन भी प्राप्त होता है और शिक्षा भी, और जिससे हठात्, एक नई चीज हृदयमें पैठ जाती है और हम ज़रा आगे बढ़ जाते हैं। हमें मालूम भी नहीं होता, पर एक संस्कार,—एक नई बात धीरे धीरे उगना आरंभ हो जाती है। वह शिक्षा और वह नई चीज़ अमुक शब्दों और वाक्योंमें नहीं होती, उपदेशात्मक नहीं होती, बहुत अधिक प्रगट और विवेचन-गम्य नहीं होती। और वह बहुत कम विश्लेषण और मस्तिष्ककी पकड़में आ पाती है। चित्रमें भावकी तरह वह सारी कृतिमें रमी रहती है। मस्तिष्ककी विवेचनाको पार कर हृदयकी अनुभूतिमें सीधी जाकर ऐसी चुभती है कि चाहे मस्तिष्क बौखलाता ही रह जाय, हृदय हिल जाता है। मस्तिष्क उसका उद्देश्य ढूँढ़ने और पकड़नेमें ही उलझा रह जाता है, उधर व्यक्तिको कुछ क्षणकी तन्मयता,—एक आनन्द, रस, एक शक्ति, एक प्रकारकी आत्मानुभूति प्राप्त हो चुकी होती है। जो तीरकी तरह अन्तः तक जा लगे। बुद्धिके पटल और जालको भेदकर मर्ममें घुस जाय, और हलचल उपस्थित कर दे, वह,—विद्वान् चाहे कितना ही उसे पहेली कहें, विद्वत्ता उसका मतलब (What it means ?) समझनेमें कितनी ही अकृतकार्य रहे, और वहाँ उद्देश्य (?) का कितना ही अभाव दीखे,—वह सच्ची चीज है, उपादेय है, और वह जीने और जिलानेके लिए आई है, वह कला है। अर्थार्थी जगत् अपनी 'उद्देश्य-पूर्णता'की परिभाषाके घेरेमें उसकी उपयोगिताको न बाँध पाये, इसमें अचरज नहीं। प्रत्युत् यह तो बिल्कुल स्वाभाविक और संभवनीय है। पर इससे जगत्को चिढ़ना न चाहिए, न हठात् उस कलाको निर्वासित

और संकुचित करनेकी कोशिश करनी चाहिए। इससे उसकी उपयोगिता न कम वेगवती होती है न कम मूल्यवती, और न ही कम आदरणीय।

कलाविदों और संपादक-कोविदोंकी छानबीनके लिए ये शब्द, जरूरी समझकर और झिझकते मनसे, उनकी सेवामें पेश कर दिये जाते हैं।

मैंने जगह जगह कहानीके तारकी कड़ियाँ तोड़ दी हैं। वहाँ पाठकको थोड़ा कूदना पड़ता है। और मैं समझता हूँ, पाठकके लिए यह थोड़ा आयास वांछनीय होता है,—अच्छा ही लगता है।

कहीं एक साधारण भावको वर्णनसे फुला दिया है, कहीं लम्बा-सा रिक्त (Gap) छोड़ दिया है; कहीं बारीकीसे काम लिया है, कहीं लापर्वाहीसे; कहीं हलकी धीमी क़लमसे काम लिया है, कहीं तीक्ष्ण और भागतीसे। मैं समझता हूँ, यह सब कुछ चित्रमें खूबी और अस्लियत लानेके लिए जरूरी हो पड़ता है। यह कम-ज्यादे रंगकी शोभा रंग-बिरंगेपनमें और स्वाद देती है।

एक और भी बात है। सभी पात्रोंको मैंने अपने हृदयकी सहानुभूति दी है। जहाँ यह नहीं कर पाया हूँ, उसी स्थलपर, समझता हूँ, मैं चूका हूँ। दुनियामें कौन है जो बुरा होना चाहता है और कौन है, जो बुरा नहीं है, अच्छा ही अच्छा है? न कोई देवता है, न पशु। सब आदमी ही हैं, देवतासे कम ही हैं, और पशुसे ऊपर ही। इस तरह किसे अपनी सहानुभूति देनेसे इंकार कर दिया जाय?

पाठकोंसे एक विनय है। मुझे भी वह अपनी सहानुभूति देते रुकें नहीं। सफल हूँ तो, असफल हूँ तो, उनकी सहानुभूति मुझे चाहिए ही। क्योंकि मैं जानता हुँ, मैं क्या हूँ।

पहाड़ी धीरज, दिल्ली
१९-१०-२९

जैनेन्द्रकुमार

दूसरे संस्करणके समय

सन् '२९ से अब '४१ आ गया है। एक खासा अरसा हो गया। अब सूरतें बदल गई हैं। जग बदला, मैं भी बदला हूँगा। यह पुस्तक देखते समय जी किया कि अगर इसे इन्कार न करूँ तो यहाँसे वहाँ तक उसे बदल तो दूँ ही। पर यह मैं नहीं कर सकता था। इससे जहाँ तहाँ उसे छुआ भर है, विशेष फेरफार नहीं किया है।

पहले संस्करणके समयके अपने आरम्भिक वक्तव्यसे आज मैं अप्रसन्न हूँ। पर क्या करूँ? आजका सच बीते कलके निषेधपर नहीं, स्वीकारपर ही कायम हो सकता है।

दरियागंज, दिल्ली
२३–१–४१

जैनेन्द्रकुमार

परख

१

वकालत पास तो की, पर शुरू न की। इसके दो कारण हुए। बी० ए० पास करनेके बाद टाल्स्टाय, रस्किन, गाँधी, या जाने किसका एक विचार-स्फुलिंग इनके जवानीके तेज़ खूनमें पड़ गया था। उस वक़्त तो सामने एल्-एल्०-बी० की पढ़ाई आ गई, उसे पढ़ने और पास करनेकी फ़िक्रमें लग जाना पड़ा, इससे कोई ख़ास फल दिखाई न दिया। पर वकालतका इम्तहान देकर, शहरके कोलाहल और व्यस्ततासे दूर, अपने गाँवमें जब आये और जीवन-क्षेत्रमें क़दम रखनेकी बातें सोचने लगे, तो वह स्फुलिंग भी चेता। अब तक भीतर ही भीतर वह इनके खूनमें अपना ज़हर काफ़ी फैलाता रहा था। वक़्त आया तो अपनी गर्मीसे इन्हें दहका दिया। सोचा—वकालतमें क्या है? अपने देशका सत्यानाश है, और अपनी आत्माका सत्यानाश है।

एक दूसरी बात और हो गई जिसने इनके इस विचारपर मोहरका काम दिया।

गाँवमें इनकी थोड़ी ज़मींदारी थी, प्रतिष्ठा भी थी। इनकी सहृदयतासे भी आस-पासके लोग परिचित थे। अपने जीकी सुनाने इनके पास आ जाया करते थे। एक रोज़ इन्होंने ऐसी बात सुनी कि यह तैशमें आ गये और इन्हें एक जोखमका कर्तव्य सामने दिखाई देने लगा।

मुंशी होशियार बहादुर ज़िलेके नामी-गिरामी वकील थे। आमदनी खूब थी, दबदबा भी खूब था। एक मवक्किलने आकर इनकी बदनीयतीका हाल सुनाया।

फ़ौजदारीका मुकद्दमा था। मवक्किल बड़ी आफ़तमें था। मुंशीजीने आस बँधाई, ढाढ़स दिलाया और मेहनताना कस कर लिया। पीछे कहीं याद न रहे इससे मेहनताना पेशगी ही दे देना अच्छा होता है। कुलका कुल पेशगी दे दिया गया।

पर वकील साहब तारीख़पर ग़ैरहाज़िर थे। तारीखें दो बदलीं, तीन बदलीं, पर वकील साहबको किसीपर मौजूद होनेकी फ़ुर्सत न मिल सकी। आख़िर एक तारीख और दी गई। अबकी वकील साहब ज़रूर पहुँचते, पर क्या किया जाय। एक पार्टी आ गई। पार्टीमें शरीक़ न हों तो कैसे हो!

वह तो खैर हुई कि मवक्किलने जाने क्या सोचकर एक और वकील कर लिया था, नहीं तो न जाने क्या होता।

जब मवक्किल गिड़गिड़ाता वकील साहबकी कोठीपर पहुंचा तो उसे निकलवा दिया गया। कुछ कहा गया तो जवाब दिया गया—रुपये!—अगर बन सके तो वसूल कर ले।

पर वसूल कैसे कर ले? मगरसे बैर कर तो जलमेंसे वसूल किये नहीं जा सकते। और इस तरह जब अदालतकी ही राह बंद हो तो गरीब बेचारा क्या करे?

सुनकर इन हमारे महाशयने निश्चय किया, वकील साहब होशियारबहादुरको सबक़ सिखायेंगे।

कुछ रोज़ बाद, कामसे, ज़िलेके शहरमें जाना हुआ। मुंशी होशियार बहादूर बार-रूममें आराम-कुर्सीपर पड़े, गप लड़ा रहे थे। वकील उन्हें घेर बैठे थे।

सत्यधन घुसे। (हमारे महाशयने आदर्शकी झोंकमें अपना नाम सत्यधन रख छोड़ा है।) पैरोंमें धूलसे भरा चरमराता हुआ देशी जूता; मोटा टुकड़ीका कुर्ता; सरपर मटमैलीसी बेढंग टोपी।

वकीलोंने सिर उठाया।—कैसा बेहूदा-सा आदमी है!

होशियार बहादुरको पहचानता तो सत्यधन था ही। सीधे फटकार बतानी शुरू की। जब आदमी अँग्रेज़ी बोल रहा है और निपट गँवार भेषमें है,—तब किसकी हिम्मत हो कि न अचकचाये। बातके अतिरिक्त, ऐसी हालतमें, और कुछ उपाय हाथमें लेनेका सूझ ही नहीं सकता। सत्यधनका भरा गुस्सा चुक चुकने-पर होशियार बहादुरने कहा—आप क्या हैं?

सत्यधनने, तनकर कहा—मैं भी वकालत पास कर चुका हूँ—

सत्यधनकी आदर्श-भक्तिमें शायद वकालत पास होनेके अहंकारको स्थान था।

होशियार बहादुरने मिठाससे कहा—ओ हो, तो आप मेरे नज़दीकी हैं। तैशमें न आँय, यह पेशा ऐसा ही है।

"अपना कुसूर पेशेपर मत टालिए।"

"ओ हो ! तो आप ईमानदार वकील बनेंगे ? तब तो म्यूज़ियमके लायक होंगे आप । क्योंकि अभी तक ऐसा जानवर देखा नहीं गया ।"

सत्यधनका गुस्सा उबल रहा था और बल खा रहा था ।

"मैं कहता हूँ..."

"देखो साहब, यह कहते हैं..."

"मैं कहता हूँ..." बात झपटकर सत्यधनने कहा ।

छँटे वकीलने उड़ाते हुए कह दिया—कहते हो अपना सिर, और क्या कहते हो !

"मैं कहता हूँ, सच्च···"

"उससे वकीलको ताल्लुक़ नहीं । तुम अभी जानते नहीं, बच्चे हो । या तो युधिष्ठिर ही बन लो, या वकील ही बन लो । सच बोलनेकी कहते हो तो झूठ कहते हो ।"

झूठ ! ऐसा शब्द सत्यधनके ख़िलाफ़ ! उसने एक ही झटकेमें बिना अटके कह दिया—

"झूठके बिना वकालत नहीं, तो मैं वकालत करता ही नहीं । जाओ । मैं केस···।"

"बस काफ़ी है । यह ठीक है ।"

इतने बहुतसे लोगोंमें की हुई प्रतिज्ञा उनके सिरपर पड़ गई । तब अपने आदर्शके चिंतनकी धुनमें किए हुए कोरे विचार अपने आप निश्चयका रूप धरने लगे और इस प्रतिज्ञाकी ज़बरदस्तीकी मुहर लगवाकर बाजारमें आने लगे ।

वकालत न करनेकी बात जब टकसाली होकर बाज़ारमें यों फैल गई, तो अब क्या किया जाय ? पढ़े-लिखे, पेटके प्रश्नकी ओर से थोड़े-बहुत निश्चिन्त इस युवकके लिए बस अब एक काम रह गया : आदर्श-आराधन ।

तन-मनसे यह आराधना उन्होंने आरंभ की । सोचनेका अपने पीछे व्यसन लगाया, उसके नशेमें अपनेको भूल जानेकी क्षमता भी पैदा की ।

कुछ पागल बनना भी शुरू किया । जैसे—

एक रोज़ बेकनकी किताब पढ़ रहे थे । पढ़ते पढ़ते रुके । जैसे विचार-धाराको कहीं कुछ झटका लगा, और उसका उलझा और रुका हुआ प्रवाह खुलकर बह चला । थोड़ी देर बाद मानों फिर वह एक रोकपर आ गया । तब किताबका वह पन्ना उन्होंने फाड़ लिया ।

फिर तो उस पन्ने पर काफ़ी दिक्क़त उठाई गई। ढूँढ-ढाँढकर एक सफ़ेद कागज निकाला, नापकर उसके बराबर काटा, ज्यों त्यों कर कहींसे लेही लाये, और उसे फटे पन्नेपर चिपकाया। और उसपर सुन्दर सुन्दर अक्षरोंमें लिखा—

"यह दुनिया एक है। अनेकों,—ऐसी ऐसी असंख्य दुनियाओंमेंसे एक है। मैं उसपरका एक नगण्य विंदु हूँ।—फिर अहंकार कैसा?

"यह काल कबसे चला आ रहा है,—कुछ आदि नहीं। कबतक चला जायगा,—कुछ अन्त नहीं। इस अनादि-अनंत कालसागरके विस्तारमें मेरे सादि-सांत जीवन-बुदबुदकी भी क्या कुछ गणना है? इन ५०—६०—१०० सालोंकी भी कुछ गिनती है!...फिर भी जीवनका मोह!—छि:।

"इन ५०—६०—१०० सालोंकी, और मेरे अस्तित्वके इस नगण्य विंदुकी क्या उपयोगिता है? ..इस बे ओर-छोरके ब्रह्मांडकी स्कीममें इस मेरे तुच्छ 'अहं' की क्या सार्थकता है?"

इसके नीचे तनिक मोटे अक्षरोंमें लिखा—

"अपना सब कुछ मिटाकर इस स्कीममें विलय होजाना जिससे मेरे जैसे और बुदबुदोंको अवकाश मिले।—धरतीमें गड़कर धरतीके तलको ज़रा ऊँचाकर जाना। भविष्यकी पुष्टिके लिए अपने जीवन और वर्तमानको स्याह कर जाना।"

लिखकर उसे फिर पढ़ा। जितना ही पढ़ते उतना ही उन्हें उसका स्वाद आता। यह लिखनेके लिए मानों वह अपनेको मन ही मन धन्यवाद देना चाहते थे।

२

सत्यधनके माँ ही माँ है। पिता नहीं हैं, न और कोई सगा है। बहन है बड़ी, जो बालबच्चे-दार है। इस तरह वह लगभग सब औरोंके उत्तरदायित्वसे निश्चिन्त है। शादी उसकी नहीं हुई। रिश्ते तो बहुतसे आये, पर शेक्सपियरकी नायिका बनने योग्य उनमें कोई न थी, इससे स्वीकार नहीं किये। इस तरह बी० ए० भी हो गया, एल—एल० बी० भी गुज़र गया, और अब यह आदर्श क्रांतिका ज़माना आ गया।

अब तक सजधज, ठाट-बाट और प्रतिष्ठाके एवरेस्टपर पहुँचे हुए असाधारण जीवनके स्वप्न देखते थे; अब सोचने लगे, फटे-टूटे मैले, बेहाल, हीन, अप-

रिचित, अज्ञात और साधारण रहकर ही जीवनकी क्यों न पूरी तुष्टि प्राप्त कर ली जाय ? अब उन्होंने अपने मार्गके किनारे खड़े 'पोष्टों' परसे 'उन्नति' मिटाया, और 'उत्सर्ग' लिख लिया। अब शेक्सपीयरकी नायिकाकी जगह किसी सकुचाई-सी गँवई किशोरिकाको घरमें ले आकर प्रतिष्ठित करना ज्यादे प्रिय लगने लगा जो अभी जीवनके साथ शिक्षाकी और सभ्यताकी बहुत-सी व्यर्थताएँ लपेटना न सीखी हो, जो सीधी-सादी, सच्ची, भोली, तिरस्कृता हो, जिसे इनकी आवश्यकता हो और जिसे सुखी बनाकर यह भी समझें 'हाँ, मैंने कुछ किया'। जिसे कुलका और पैसेका दर्प न हो, और जो अपने पतिदेवमें अपना सारा दर्प और गौरव केन्द्रित कर उनकी पूजा कर सके।

विवाह सम्बन्धी विचार जब यह रुख पकड़ रहे थे तभी एक लड़की अजीब ढंगसे इनके जीवनमें अनजानमें ही हिल-मिल जा रही थी।

यह लड़की इनके ही गाँवकी है। पड़ौसमें ही घर है। गाँवका पड़ोस शहरके पड़ौस जैसा तो होता नहीं, इसलिए वह मानों इनके घरकी ही जैसी है।

जबसे इन्होंने होश सँभाला है, तभीसे वह इनके सामने आती रही है। इनकी आँखोंके सामने वह नन्हीं-सी बच्चीसे अब चौदह बरसकी हो गई है। दिन थे, कभी इसे गोदी खिलाया था, बड़े चावसे थपका थपका कर उसे सुलाते थे। फिर दिन आये, वह खेलने-खिलाने और चिढ़ाने-मनानेके लायक हो गई। तब उसके साथ यह कौतुक भी सब किया।

इसी बीच एक दुर्घटना घट गई। उससे इनके इस खलने-खिलानेके रससे भरे संयुक्त जीवनका अंत ही हो गया होता। पर कहिए विधिका विधान ही उलटा पड़ा, या कहें कि अनुकूल पड़ा ! क्योंकि चौथे वर्षमें उसका विवाह हो गया और पाँच वर्षकी होते न होते वह विधवा हो गई !

जब विधवा हो गई तो यह तो कैसे होता कि आठवीं क्लासमें पढ़नेवाले छात्रको पता न चलता। पता तो चला, पर यह 'विधवा' विशेषण उन दोनोंके बीचमें आकर खड़ा न हो सका। भला उस एक जरा-सी घटनासे उन दोनोंको क्या मतलब जो एक दिन गाजे-बाजे और लड्डू-पूरियोंकी ज्योनारके साथ संपन्न कर दी गई थी ? और न इन्हें एक दूर-दराजके श्रीमंत वृद्धके मर जानेसे ही कोई खास सम्बन्ध जान पड़ा। इसलिए इन दोनोंकी दुनियाँ तो ज्यों की त्यों बनी रही। उलटे इस 'विधवा' शब्दके विशेषणने दोनोंको और निकट ला दिया।

सर्कारी स्कूलके दशम श्रेणीके यह छात्र-महाशय जब पार न पाते, तो लड़कीसे कहते—ओ हो, विधवाजी ! ...

इसपर सात बरसकी उस लड़कीका चेहरा एकदम फुट-भर लम्बा और मन-भर भारी हो जाता ।

इस कौतुकके लिए 'विधवाजी' का शब्दार्थ समझनेकी क्या आवश्यकता थी ? क्या यह काफ़ी नहीं था कि वह उसे चिढ़ानेके लिए कहा जा रहा है ? और कभी कभी रूठना क्या स्त्रीत्वका तकाज़ा नहीं है ?

इस तरह उस विधवा-शब्दने उन्हें रूठने-रुठाने और मनने-मनानेके बहुतसे अवसर देकर उन्हें एक-दूसरेके और निकट ला दिया ।

किंतु कालिजसे अब वह दसवीं क्लासका लड़का बहुत होशियार बन आया है। वकील बन आया है, और वकीलके ऊपर अब फ़िलास्फ़र बन गया है । अब वह भूलकर भी विधवा शब्द, मुँहमें तो क्या, दिमाग़में भी नहीं आने देता ।—किंतु इससे क्या ?

पर जैसे जीवनके पहले रोज़से हम हवाको अपने लिए आवश्यक और सहज-प्राप्य रूपमें स्वीकार कर लेते हैं और उस ओर विशेष ध्यान नहीं देते, ऐसे ही वह भी लड़कीके बारेमें विशेष ध्यान नहीं देते थे । पर इससे क्या ?

हर-साल कालिजकी गर्मीकी छुट्टियोंमें यह लड़कीको पढ़ाया करते थे । कोर्स खतम करनेके बादकी इन छुट्टियों और उन छुट्टियोंमें लड़की कोई अंतर न देख सकी। वह पढ़ने आने लगी । पर यह छुट्टियाँ कब और कैसे ख़तम की जायेंगीं ?

पढ़नेका काम आरंभ तो कभीका हुआ, पर बढ़ अभी ज़रा ही पाया है । बात यह है, साल भर यह सिलसिला टूटा पड़ा रहता है, और फिर इन छुट्टियोंमें ही जुड़ता है । गाँवमें वह पढ़े वह और किससे, और अपने आप तो पढ़ती रहे कैसे ? पर इससे उत्साह तोड़नेका नाम न मास्टर साहब लेते हैं न लड़की ।

क्या यह उत्साह प्रशंसनीय नहीं है ?

२

आइए पढ़ना देखें ।

लड़की तन-मनसे पढ़ रही है, पर मास्टरजी तन-मन से नहीं पढ़ा रहे हैं । वह जाने क्या देखते हैं, और फिर क्या सोचते हैं ।

लड़की अपनी सुलेखकी कापीमें बना बनाकर लिखनेमें लगी थी कि उसकी इगलिश रीडर इन्होंने उठा ली। जो पाठ आज पढ़ना था उस सफ़ेपर निगाह जमाते जमाते लिखना शुरु कर दिया। छपी लाइनोंके बीच बीचमें मोती-से अक्षरोंमें लिखा—

"हमारी कट्टो पढ़ती है। लोग कहते हैं, वह विधवा है। हम कहते हैं, वह कट्टो है और दुनियाभरसे अच्छी है।

"एक रोज़ हम चले जायेंगे। वह रह जायगी। फिर वह भी चली जायगी। दुनिया रह जायगी। वाह!—यह तो बड़ी बुरी बात होगी।

आखिर कट्टोका लिखना खतम हुआ और अब पढ़ने का समय आया।

किताब तो गुरुजीने दुबका ली थी,—उन्होंने क़ुसूर जो किया था। किताब भी कुछ ऊट-पटाँग लिखने की चीज़ है? कट्टोने अपने चारों तरफ़ किताब देख ली पर न मिली।

गुरुजीने पूछा—क्या है?

उत्तर मिला—हमारी रीडर!

"क्या हमने ले ली?"

"कहाँ गई?"

"देखो।"

कट्टोने फिर देखना शुरू किया। हार हूर कर आ खड़ी हुई—

"देख तो ली।"

"कोई फ़रिश्ते थोड़े ही ले जायेंगे!—फिर देखो।" गुरुजीने कहा और किताब कोटकी तहमें सरका ली।

काफ़ी ढूंढ़-ढाँढ़के बाद कट्टोने कहा—

"कोई सुई है!—कितनी तो देख ली!"

"अच्छा, हम साथ-साथ चलते हैं,—अब देखो।"

बहुत कुछ देखा तो उसी कमरेके एक कोनेमें औंधी पड़ी हुई वह किताब मिल गई।

"कहीं तो पटक देती हो,—फिर कहती हो कहाँ चली गई?"

"मैंनें तो सँभालके रक्खी थी।"

"बड़ी अच्छी रक्खी थी!....अच्छा, अब सबक़ शुरू करो।"

सबक़ शुरू हुआ। वही पन्ना खुला,—

"हैं ! ये क्या कर दिया ! किन्ने कर दिया ?"

"देखें !" मास्टर साहबने किताब लेकर बड़े ग़ौरसे देखी । कहा, "कोई बड़ा पागल आदमी है ! ····यह तुम्हारा ही खेल तो नहीं है ? ····"

"मैं सच कहती हूँ—मैंने नहीं किया ।"

"सच तो बहुत कहती हो ! ····फिर कौन कर गया ?"

"तुमने करा होगा ।"

"मैंने ?—हरे, राम राम !"

किंतु इस तीव्र विस्मय-बोधकसे लड़कीका संदेह और पुष्ट ही हुआ । पूछा—

"नहीं तो किन्ने ?"

"मैंने ? ····देखो, मैं तुम्हारे सामने ही तो बैठा रहा हूँ ।"

"हाँ हाँ ! चुपचाप किताब उठा ली होगी ।"

"हरे हरे ! मैं कोई बेवकूफ़ हूँ !

"हम नहीं जानते । हम तो नहीं पढ़ते । हमें दूसरी किताब लाके दो ।"

"कौन लाके दे ?"

"तुम ।"

"क्यों ?"

"हम नहीं जानते ।"

"तो हम भी नहीं जानते ।"

"हम तो नहीं···· ।"

"तो हम भी नहीं···· ।"

"नहीं लाके देनेके ?"

"नहीं लाके देनेके ।"

"तो हम नहीं पढ़ते ।"

"मत पढ़ो ।"

इसपर १४ बरसकी विधवा कट्टो बिना ज़रा देर लगाय उस किताबको उठाकर और सब बस्ता वहींका वहीं छोड़कर चलती बनी ।

"ओ पगली ! कट्टो ! ····सुन तो !"

उसने सुना । लेकिन वह बढ़ती ही रही । आँखोंके ओझल न हो गई, तब तक बढ़ती गई । फिर दूसरे कमरेमें आकर खड़ी हो गई ।

"अरी ओ पागल कहींकी !—सुन !"

कट्टो चुप।

मास्टरजीको पूर्ण विश्वास था कि कट्टो जायगी नहीं, आ जायगी, इसीसे दो-तीन-चार आवाजें दीं। कट्टो सबको पी गई और दुबकी दुबकी चुप खड़ी रही।

इसपर मास्टर-साहब धड़धड़ाते हुए आये और सीधे बड़े दर्वाज़ेपर पहुँचे! बाहर सड़कपर देखा,—कट्टो न थी। वह वहीं खड़े रह गये,—कुछ सोचते रह गये। दो तीन मिनट बाद कहा,—'वाह!' और लौट आये।

इधर कट्टो मास्टर-साहबके बाहर होते ही अपने क्लास-रूममें दाखल हो गई थी और आते ही भली विद्यार्थिनीकी भाँति सबक़के मुश्किल शब्द किताबोंमेंसे कापीमें नक़ल करने लगी थी।

मास्टरजी आये। आते ही कहा—कौन?—कट्टो!

उसने कापीमेंसे मुँह नहीं उठाया।

"बड़ी शैतान हो तुम!"

कट्टोको जैसे कापीमें शब्द लिखनेके सिवा दुनियामें किसीसे मतलब ही नहीं।

"और ऐसी छिप कहाँ गई थीं?"

कट्टोने ऊपरको देखा। जैसे उसकी आँखोंमें चुनौती भरी थी, कोई हमें हरा सकता है? उसनें कहा—

"तो नहीं लाके दोगे नई किताब?"

"क्यों नहीं लाके दूँगा।'

इसपर वह सब कुछ भूल-भालकर, मास्टर-साहबके मुँहके सामने एक बार मुंह बिचकाकर, खिलखिलाकर हँसने लगी।

मास्टरजीने कहा—तो यह किताब तो मुझे दे दो।

लड़कीने पूछा—तो इसमें य' तुम्हींने लिखा था न?

मास्टरजी पकड़े गये, बोले—हाँ।

लड़कीने कहा—तो हम नहीं देते यह तुम्हें!

"तुम इसका क्या करोगी?"

"कुछ भी करें!"

"आखिर क्या?"

"फाड़ दूंगी!"

"अरे, नहीं नहीं !"

किताबको दोनों हाथोंमें पकड़कर लड़कीने कहा—

"देखो, यह फाड़ी, यह !···फाड़ूं ?"

"नहीं नही नहीं !···"

"फाड़ती हूँ !"

"नहीं, देखो, नहीं !"

लड़कीने देखा, मास्टर-साहबसे यह नहीं होता कि उससे किताब छीन लें। यही तो वह चाहती है । उसने कहा—मैं तो फाड़ती हूँ ।

मास्टरजीने देखा, लड़कीके हाथ जैसे सचमुच किताबके साथ ज़ोर कर रहे हैं। वह उसकी तरफ़ झपटे । लड़की चौकन्नी थी—पलक मारतेमें फुदककर दूर जा खड़ी हुई ।

"वाह ! ऐसे झपटे, फिर भी कुछ नहीं !···देखो यह फटी यह !"

मास्टरजीने कहा—तुम्हारे हाथ जोड़ूँ, फाड़ो मत !

लड़कीने कहा—अच्छा, जोड़ो हाथ ।

मास्टरजीने हाथ जोड़ दिये ।

बालिकाने अपने दोनों हाथोंसे उन जुड़े हुए हाथोंको पकड़ लिया । किताब देते हुए कहा—'लो' । फिर कहा—

"अच्छा, अब सबक़ पढ़ाओ ।"

मास्टरजी चुपचाप सबक़ पढ़ाने लगे ।

४

जब पढ़ाई ऐसी हो, तो जीमें खलबली मचे कैसे नहीं ? मास्टरजीके जीवनमें थोड़ा मिठास आने लगा ।

समझते थे हम एक थिरतापर आ गये हैं। विचारों और धारणाओंको पीट-पीटकर मज़बूत करके, उनके ऊपर बैठकर, सोचने लगे थे कि अब डिगेंगे नहीं। जैसे जीवन भी सरल रेखाओंसे घिरा कोई पिंड है जिसे नाप-तोल कर निश्चित कर लिया जाय !

पर यह क्या हो गया ? पल-भरमें यह कैसी गड़बड़ मच गई ! अब तक तो

कुछ न था। अपने उस चबूतरेपर बैठ कर जीवनको और संसारको पढ़ने और सुलझाते रहनेमें कोई मुश्किल नहीं जान पड़ी। पर जैसे अब सारा संसार, और वह, और वह उनका चबूतरा,- सब एक झूलेमें झूलने लग गया। एक लहर उठी और उनके सारे अस्तित्वको डुबाने-उतराने लगी। सब कुछ मिट-मिटाकर सावनके इन्द्र-धनुषके रंगोंमें लय हो गया—और उन रंग विरंगे रंगोंमें झाँक-झाँक कर देखती हुई दीखने लगी वह कट्टो! यह किसकी माया थी?

ज़रा-सी कंकरीने आकर सोये-हुए विशाल जल-तलकी स्थिरता भंग कर दी! हलकी-सी हवाका झोंका जैसे जब जल-तलको थपकता हुआ वहता है, तो उस सारे तलमें एक सिहरन-सी होती है, उसमें कँपकपी उठ जाती है। वैसे ही किसी अज्ञात आवेगको मीठे झोंकेने उनके सोये जीवनके तलपर एक सिहरन-सी फैला दी। कटोरेको जैसे किसीने वाहरसे छू दिया, और उसके भीतरका पानी यहाँसे वहाँ तक काँप गया!

जीवनकी गहराईमेंसे जो लहर उठी हो, उसको मनुष्यके वनाय हुए धारणा-संकल्पोंके रेतके किनारे कहाँतक कबतक रोक सके हैं?

२

थोड़ा कट्टोसे परिचय करें।

वह चार वर्षकी विधवा है। ग़रीव माँ-बापकी है। वाप है नहीं, माँ ही माँ है। वह माँके ऊपर बोझ है, और माँ, जब तनिक झींकती हैं तो स्वर्गमें जा वैठे उसके निर्मोही बापको याद करती हुई अमुक शब्दोंमें यह सत्य पड़ोसियोंपर और अपनी उस लड़कीपर प्रकट कर देती है। फिर कुछ सगे भी हैं, पर वे हर वक्तके लिए नहीं।

उसका नाम? हमारे मास्टर-साहबने उसका नाम कट्टो रक्खा है। लड़की वुरा माने तो माने, हमारे लिए यही नाम यथेष्ट है। और यह नाम विल्कुल निरर्थक नहीं है। मास्टरजीने रक्खा तो वहुत समझ-बूझकर नहीं है, पर बहुत उपयुक्त है। कट्टो गिलहरी को कहते हैं। उसकी ठोड़ी गिलहरीके मुँह जैसी है वैसी ही नोकदार। उसके चेहरेसे भी वही गिलहहीरीका भाव टपकता है। झटपट झटपट, यहाँ दौड़ वहाँ दौड़, इधर देख उधर देख,—ये सब भाव उसमें हैं।

गिलहरी जब किसी गोल मटरको लेकर, पिछले पैरोंपर उचकी बैठकर, अगले दोनों हाथोंसे मुँहमें दस बार देकर खाती है और आपको ताकती रहती है तो कैसी सुंदर लगती है ! ऐसीही वह है । और जैसे कट्टो, ज़रा चुटकी बजाओ, तो, चट दरख्तकी छत पर पहुँच जाती है, ऐसे ही मिनट-भरमें यह कट्टो कहाँ भाग जायगी, कुछ पता नहीं ।

पर, जगत्का वैषम्य देखो। एकके तो ये भाव दुनियाको खुश करते और प्यारे लगते हैं, दूसरीके लिए वे ही उसके पाप हैं । इस लड़कीकी इन बातोंको देखकर लोग बड़े कुढ़ते और नाखुश होते हैं ।

लोग कहते हैं,—वह विधवा है कमनसीब । लड़की जान गई है, वह विधवा है, कमनसीब भी होगी । लेकिन फिर हँसने-खेलने, भागने-कूदनेका अधिकार वह क्यों नहीं रखती,—यह वह नहीं समझ पाती ।

बालिका सुंदर नहीं है। उसके ओंठ ज़रा ज्यादे ताज़े और ज्यादे खुले हैं और जैसे फैलते फैलते यकाएक रुक गये हैं । चेहरेके एक-एक अंगमें और भी दोष निकाले जा सकते हैं। पर वह इन सबसे निश्चिंत हैं, और समझती है, वह असुंदर नहीं है, रंग उतना उजला नहीं जितना साँवला है ।

लेकिन आँखें ? जाने उनमें क्या है ! वह एक क्षण कहीं टिककर ठहरती नहीं । यहाँ-वहाँ, यहाँ-वहाँ तिरती रहती हैं पर ठहरती हैं, तो जैसे उसके भीतर तक चली जाती हैं । उन आँखोंमें जाने कैसा औत्सुक्य और जाने क्या है कि लगता है जैसे उसे सब हरियाला है, सब निमंत्रण है, सब चेतावनी है । उन आँखोंमें एक चमक है और जब पलकें उनपर झुकती हैं तो यह चमक एक पतली-सी रेखामें आ इकट्टी होती है, और वहाँ जैसे आर्द्रता फैल जाती है।

वे आँखे उसकी बड़ी कुतूहल-पूर्ण और बड़ी हिंसा-मय हैं । उसके कुतूहलमें जैसे हिंसा है, और हिंसामें सिवा कुतूहलके कुछ नहीं है। वे आँखे जैसे कहती हैं कि वे सब देखती हैं पर नहीं देखतीं। उनके लिए कुछ भी वर्ज्य नहीं है।

इन आँखोंसे ही कह सकते हो सुंदर नहीं है, और इनके कारण ही कहा जा सकता है कि वह अत्यन्त सुंदर है। जैसे मानों स्त्रीत्व छनकर इन आँखोंमें भर गया है ।

———

६

मास्टर साहब सोचमें हैं। सोचते हैं,—यह जो एक नया मीठा-सा उद्वेलन उठा है और जो मुझे झुलाता-ललचाता है, मैं उसे बहला बहला कर पोसना शुरू कर दूँ तो परिणाम अनिष्टकर हो सकता है।

तभी बस्ता लेकर कट्टो आ पहुँची।

"कट्टो, आज पढ़ना नहीं होगा। आजसे···"

कट्टोका झट-से एक हाथ मास्टर-साहबके माथेपर जा पहुँचा। यह हाथ थर्मामीटर है।

"क्यों, कैसी तबीयत है?"

यह मन क्यों खिसकने लगा? यह बुरी बात है। बोले तबियत ठीक है। पर आजसे···

कट्टो मास्टरजीके ऊपर छोटी-मोटी डाक्टरनी बन बैठी है। हाथ रखते बतला दिया, तबियत सचमुच ठीकही है। शारीरिक कोई शिकायत है ही नहीं। बाक़ी जो होगा सो वह खुद देख ही लेगी। बोली—

"आज वह फिशरमेनवाला सबक़ है। सी-शोअर मायने क्या, और—और बिलोज···"

"सी-शोअर—किनारा। बिलोज—लहर। पर कट्टो, मुझे काम है, मैं जा रहा हूँ।"

"अच्छा जाना, मायने लिखा जाओ।"

"नहीं···"

"नहीं कैसी?"

ऐसे ज़ोर-जब्रका उल्लंघन कैसे हो? पढ़नेवाला जब पढ़के ही छोड़ेगा तो पढ़ानेवाला क्या करे? फिर भी बोले—

"ऐसी कोई तुम्हारी ज़बर्दस्ती है?"

जबर्दस्ती नहीं तो यों ही—!"

कह तो गई, पर ऐसी बड़ी बात कहकर ख्याल उसे ज़रूर हुआ। भला पूछो इसकी ज़बर्दस्ती कैसी? उसने भी सोचा, 'भला मेरी ज़बर्दस्ती कैसी?'

उसने अपनी उन उन्हीं भेदीली आँखोंसे ऊपर देखा। उन आँखोंमें कातर भावसे लिखा था: मानों तब तक ही ज़बर्दस्ती है, नहीं तो मैं कौन हूँ!

मास्टरजीने देखा, कैसी ये आँखें हैं ! सोचा उन्हींको पारकर तो वह ऐसी बड़ी बात कह रही है। उसकी बात उन्हींपर आ पड़ी है। मानें तो, नहीं मानें तो- उन्हींके हाथ है। वही जज हैं, अभियोगकी फरियाद और कहीं नहीं जायगी, उन्हींके पास आयेगी।—फिर वह अभियोगमें हाथ कैसे डालें ? बालाने अपनी बात कहकर उसकी रक्षाका सारा भार उनके ऊपर डाल दिया। अब वह बड़े असमंजसमें पड़ गये। इस सिलसिलेको तोड़ना तो है ही, पर क्या इस तरह ? उनके आसरे जो ज़रा सी बात कह डाली गई है, उसकी रक्षासे विमुख होकर ?—नहीं। उन्होंने कहा—अच्छा, आज पढ़ लो। कलसे...

बात जब यों झटपट मान ली गई तो कट्टो समझ गई, यह कोरा मान-मनौवलका तमाशा नहीं है। वह मास्टर साहबको खूब जानती है। मास्टरजीको देखकर और बातके ढंगको देखकर उसे रंचमात्र संशय नहीं रहा कि कल पढ़ाई नहीं होगी। आजका दिन उसकी पढ़ाईका, उसकी ज़बर्दस्तीका और उसके राज्यका अन्तिम दिन है। उसका उत्साह बुझ गया। बड़े कड़वेपनके साथ बोली—

"ओह, मैं क्या कह गई ! मैं कौन हूँ जो मेरी ज़बर्दस्ती हो !"

इस अप्रिय बातको संक्षिप्त करनेके लिए मास्टरजीने कहा—

"अच्छा, पढ़ो, पढ़ो।"

पढ़ाई हुई। पर बिल्कुल सूखी। वृंत-च्युत फलकी तरह उसका मन टूटकर धूलमें लोट रहा है। मशीनकी तरह किताबमें आँख गाड़े वह पढ़ रही है,—पर क्या खाक-धूल पढ़ रही है, सो कौन जाने।

मास्टरजीका मन भी जैसे मिचला रहा है। जैसे रो उठनेकी तैयारीमें हो।

"कट्टो, अब जाना भी तो होगा।"

"जाना होगा ? क्यों, कहाँ ?—छुट्टियाँ खतम हो गईं ?"

छुट्टियाँ खतम नहीं हो गईं, खतम की जा रही हैं। और इस तरहसे कि वह अब लौटें ही नहीं। पर कट्टोसे यह सब समझाकर कैसे कहा जाय ?

"हाँ, छुट्टियाँ भी खतम होंगी ही।"

"पर अबके बड़ी जल्दी—!"

"हाँ।"

यह दबा-सा 'हाँ' सुनकर कट्टोने कहा—

"यह क्या बात है ? छुट्टियाँ खतम हो गई हैं तो जाओ। ऐसे क्यों होते हो ?"

सत्यधनने सँभलनेका यत्न करके कहा—

"कहाँ !——कैसा भी तो नहीं हो रहा !"

"तो कब जाओगे ?—कल ?"

कल ही चल देना पड़ेगा, सो तो न सोचा था। पर अब देखा, नहीं भी कैसे करें। बोले—हाँ।

"किस वक्त ? सवेरे या शामको ?"

"तीसरे पहर।"

"अच्छा, मैं जबतक न आऊँ तबतक मत जाना। कहो, नहीं।'

"नहीं।"

कट्टो फिर चली गई और मास्टर-साहब पड़ गये। कट्टोका ध्यान आने लगा। सोचते सोचते, प्रेम तो क्या कहें, पर कट्टोपर रह रह कर करुणा उठ आती थी। वह कैसे अपने वर्तमानमें मग्न है जब कि भविष्य शून्य, निर्जन और अँधेरा है। जब इस भविष्यमें कट्टो पहुँचेगी, तो उसका क्या हाल होगा ? पर, देखो, कैसी लड़की है। इसकी चिन्ता भी उसे छू नहीं गई। क्या कुछ हो सकता है कि यह भविष्य उलट जाय ? क्या वह जीवनके अंतिम दिन तक इसी तरह उनसे पढ़ने आती नहीं रह सकती ? उसकी खातिर वह खुद इसी तरहके बिन ब्याहे मास्टर बने रह सकें तो कैसा ? लेकिन···कल तो जाना है !

क्यों जाना है ? नहीं जाना। नहीं जाते। होने दो जो हो, भागकर क्यों जायें ?

तभी डाकिया डाक दे गया। बिहारीकी भी चिट्ठी आई। वह फेल हो गया। उसके बाबूजी परिवारके साथ काश्मीर जा रहे हैं। बहुत ज़ोर दे रहे हैं—तुम चलो। चलना पड़ेगा। टाल नहीं सकोगे। टालोगे तो क़सम। गरिमाका भारी अनुरोध है। क्या उसकी भी रक्षा नहीं करोगे ? अमुक दिन जा रहे हैं, उससे पहले ही मिल जाओ।

यह चिट्ठी इसी वक्त क्यों आकर पहुँची ? क्या भाग्यके इशारेपर ? ऐसा है तो यही सही।···लो, कट्टो, मैं सचमुच चलता हूँ।

बिहारीको चिट्ठी लिख दी गई। अगले दिन सवेरा हुआ, दो पहर भी टल गई। चल देनेका वक्त अब हुआ ही चाहता है,—पर कट्टो नहीं आई ! भीतर ही भीतर उत्कण्ठासे प्रतीक्षा कर रहे थे,—न आई तो जी मसोसने लगा। लेकिन सोचा, मुझसे तो पक्की वही है, फिर मैं ही क्यों कच्चा बना रहूँ ? हठात् सूझा—आये न आये, वक्तसे थोड़ा पहले ही चल दो।

इधर कट्टोको बहुत-सा काम करना था। पहले तो बहुत-सा रोना था, क्योंकि भीतरसे जीको ऐंठता हुआ जो क्षोभ उठा है, उसे बहाये बिना वह और कुछ भी नहीं कर सकती। फिर एक तकिया बनाना था। अबके एक तकिया बनाकर मास्टर साहबको देगी। काम छोटा-मोटा है नहीं, फिर बड़े यत्नसे किया जा रहा है। दो पहर बीत रही है तो क्या, यह भी अब खतम हुआ। मेरे बगैर वह जा तो सकते नहीं, वह निश्चिन्त है और एक मोनोग्रामपर झट झट सुई फेर रही है। उस मोनोग्रामका भी इतिहास है। पर उस इतिहासको सुनायगी तो देर हो जायगी। और मास्टर साहब कहीं चले न जायँ!

काम खतम हुआ। तकियेकी तह करके, एक कागज़में लपेटकर, कट्टो उछलते मनसे चली। घर पहुँची, पर मास्टर साहब कहाँ?

यह क्या हो गया? उसकी ज़बर्दस्तीके दिन क्या बीत गये?—जरा-सी बात भी अब उसकी नहीं रक्खी गई? अभी तो आ रही थी, ठहर जाते तो क्या होता? वह रोई नहीं, सुन्न हो गई।

इधर मास्टर-साहबकी साहित्यिकताने बीचमें दख़ल दे डाला था। होना है सो तो होना ही है, पर कड़ुआपन क्यों रहे? हँसी खुशी सब क्यों न हो जाय? सोचा-तांगेपर बिस्तर पहुँचा आयें, आप घरसे ज़रा दूर दुबके खड़े रहें और जब कट्टो सोचमें मर रही हो, तब परमात्माकी विभूतिकी तरह आविर्भूत हो जायें।

कट्टो लकड़ीके ठूँठकी नाईं काठ-मारी खड़ी थी। यह कैसी आवाज़ आई—'कट्टो!' और उसके साथ हँसीका ठहाका!

विद्युत्की तरह क्षण-भरमें जीवनकी चुहलकी लहर उसके सारे शरीरमें फैल गई।

रोमांच हो आया, शरीर उछलने लगा—

"तुम बड़े दुष्ट हो!"

"यह काग़ज़में क्या है?"

"नहीं दिखाती, नहीं देती।"

"मैं भी देखूँ कैसे नहीं दिखातीं, कैसे नहीं देतीं?"

"मुझसे लड़ोगे? बड़े अर्जुन हो!—लो।' देकर वह तो घरके भीतर भाग गई।

खोल-खाल कर देखा। ओहो, बड़ी कारीगरीका काम है! और यह!—

यह मोनोग्राम तो कहीं मैंने ही बनाया था। अब यह रेशमके धागोंसे गूँथ-गूँथ कर मुझे ही दिया जा रहा है! इस भयंकर चीज़को अपने साथ कैसे रखूँ? इस गूँथनके साथ न जाने और क्या गूँथ दिया गया है,—सो उसका अधिकारी मैं कैसे बन जाऊँ?

भीतर कमरेमें कट्टोको ढूँढ़ पाया।

"लो, अपनी कारीगरी लो। मैंने कुछ उचाट नहीं लिया।"

"मैं नहीं लेती।"

"मैं क्या करूँगा?"

"क्या करोगे? क्यों, पास रक्खोगे, अच्छी तरह रक्खोगे। नहीं रख सको तो फेंक देना। यह फेर देनेके लिए नहीं है।"

कॉमेडी तो गड़बड़ हुई जा रही है। यह विदा ट्रैजिक हो गई तो सदा कसकेगी। कहा—

"यही सही, साहब। रक्खेंगे।—बस?"

लेकिन इन बातोंमें स्त्रीकी आँखोंको धोखा देना सहज नहीं है।

"रक्खो तो, नहीं रक्खो तो··"

"फिर वही! रक्खेंगे, रक्खेंगे।··लेकिन अब चला।"

"जाओ!"

इस "जाओ" में यह व्यथित आह-सी क्या बजी? यह फिर गड़बड़। कहनेके लिए कहा—

"सबक़ पक्का करती रहना। आऊँगा, तो इम्तहान लूँगा। भला?"

"अच्छा।"

"अच्छा तो कट्टो, चलूँ ही।" कहते हुए उसका एक हाथ अपने हाथोंमें ले लिया और कहा—

"कैसी अच्छी कट्टो हो! खूब सबक़ याद करोगी। और मुझे भी याद करोगी—है न?"

"हाँ।"

ज़्यादह देर लगाना ठीक नहीं। मन धँसता जा रहा है। जेबसे सुनहरी जिल्दकी एक छोटी-सी किताब निकालते हुए कहा—

"लो, अपने तकियेका इनाम!"

उन्होंनें चुप चुप दिया और लड़कीनें चुप चुप ले लिया।

वह चल दिये, वह खड़ी रही।

घर आई। किवाड़ बंदकर किताब खोली। भीतर वही मोनोग्राम बना है। यह कैसा सुन्दर है, मेरा कैसा भद्दा था !

ओ मास्टर, तुम कहाँ गये ?

७

मास्टर साहब काश्मीरकी राहमें हैं। बिहारी साथ है, बिहारीकी माँ और बाबूजी, छोटा भाई छह बरसका विपिन, और बहन गरिमा। गरिमा नाम भी हमारे मास्टर साहबका ही रक्खा हुआ है। जैसे उस अपने गाँवकी गँवई लड़कीको देखकर इन्हें कट्टो सूझा वैसे इसे देखकर पहले ही पहले गरिमा सूझा था। 'गरिमा' इनके मुँहसे निकला कि इनके और बिहारीके बीच लड़कीका वही नाम पड़ गया। फिर तो घर-भरके लिए नाम ही वह हो गया।

कालिजके दूसरे सालसे ही बिहारी सहपाठी है। बिहारीको यह इतने भाये कि बिना देखे ही घर-भर इनको जान गया। शुरू बार ही जब घरमें घुसकर बाबूजीको प्रणाम किया तभी इन्होंने अनुभव किया कि वह पहलेसे ही उनके आत्मीय बन गये हैं, दूसरे नहीं हैं। माँके मुँहसे जब निकला 'बेटा' ही संबोधन निकला। विपिन तब नन्हा था और गरिमा खिलने पर आ रही थी।

बाबूजी वकील हैं। हैसियतके दुनियादार आदमी हैं। सत्यधनको जानकर गरिमाकी चिन्ता करना उन्होंने छोड़ दिया। घरमें एक बार कहा—

"देखती हो ? अब लड़कीको खूब पढ़ानेका काम ही रह गया है। आगेकी चिन्ता परमात्माने हमारे ऊपरसे उठा ली है।"

पर सत्यधनके क्या शेक्सपीयरसे कम आँखें हैं ? जूलियटसे कमका स्वप्न वह किसी तरह नहीं देख सकते। उनका मन किसी तरह नहीं मानता कि शकुंतला होना अब बंद हो गई हैं। होती हैं, पर भाग्य चाहिए। और वह अपने भाग्यको हेय माननेको तैयार नहीं हैं।

गरिमा बड़ी अच्छी लड़की है। पढ़नेमें तेज़ है, बात करनेमें चतुर, देखनेमें लुभावनी है। और जब खिलेगी तो बात ही क्या !—लेकिन—लेकिन—ऊँह !

बी०ए० करनेके बाद बाबूजीने बड़े चक्करसे इस बातको बाँधना शुरू किया।

"सत्य, अब क्या करोगे ?"

"अभी तो वकालत ही पढ़ना है ।"

"ठीक ।..तुम्हारी माँकी तो उमर अब काफी हो गई होगी ।"

"जी ।"

"तुम्हें अब उनकी चिन्ता करनी चाहिए ।"

सत्यने कुछ हाँ—हूँ कर दिया । बाबूजीने कहा—

"गिरीका पढ़ना तुमने देखा ? "

"सुनते हैं, खूब तेज़ है ।"

"हाँ, अच्छी है । म्यूज़िकमें इनाम पाया है । अब नौवींमें है ।"

सत्यने यहाँ भाग छूटना चाहा ।

"हो न हो, कभी कभी उसे कुछ बता दिया करो । बिहारी तो बड़ा नट-खट है । वह तो कुछ करता-धरता नहीं ।"

"अच्छा ।"

सत्यने सोचा, जितनी देर लगती है, उतनी ही मेरी मुश्किल बढ़ती है। उसने मामला साफ़ कर देनेके लिए कहा—

"माँ ब्याहके लिए ज़ोर दे रही हैं । मैं कह चुका हूँ, वकालतसे पहले ब्याह करना पैरोंमें कुल्हाड़ी मारना है । ये आख़िरी साल हैं, इनमें पूरी मेहनत लगानी चाहिए ।"

"सो तो ठीक" वकील-साहबने कहा, "पर माँका कहना भी ग़लत नहीं है । उन्हें भी तो सेवाके लिए कोई चाहिए न ?"

"पर वकालतसे पहले तो मैं कुछ कर नहीं सकता ।"

"सो तुम्हारी मर्ज़ी ।"

जालको इस तरह काटकर थोड़ी देरमें वह विदा ले गया ।

वकील साहब कभी युवा रहे हैं, और दुनिया देखी है । समझ गये, अभी लड़का स्वप्न देख रहा है । शेक्सपीयरकी पढ़ाई अभी बहुत ताज़ी है । ज़रा पढ़ाई ठंडी होने दो, स्वप्न-जगत्‌की जगह यह ठोस जगत् आने दो, तब वह अपने आप राहपर आ जायगा । जल्दीकी ज़रूरत क्या है ?

तबकी निबटी निबटी बात बाबूजी अब उठाना चाहते हैं । इसीलिए

काश्मीर प्रवासमें उसे इस तरह आग्रहपूर्वक बुलाया गया। जब वह झट आ गया, तो बाबूजीने देखा, लक्षण बुरे नहीं हैं। उन्हें क्या मालूम बीचमें और कुछ घट चुका है।

गरिमा इंट्रेंस भी पार कर चुकी है, और किशोर वय भी। अब यौवन-वसंतकी देहलीपर खड़ी उस बसंतोद्यानकी झाँकी ले रही है। अभी देख रही है— वसंतकी वायु झोंके ले ले कर आती और उसके शरीरपर अपना नशा फेंक जाती है। थोड़ी देरमें दहलीज़से उतरकर वह आगे बढ़ चलेगी, बह चलेगी। अभी अभी तो वहीं चुप-चाप खड़ी सब कुछ देख रही है। चलनेसे पहले वह अपनेको चाहसे भर-पूर भर लेगी, जिससे यह चाह उसे यौवनके कालमें उड़ाये ले चले, उड़ाये ले चले।

रेल उन्हें पहाड़की हरियाली उपत्यकाओंमेंसे ले जा रही है। बिहारी और सत्य जागते हैं,—बाकी सो रहे हैं। गरिमा सब कुछ अपनी पलकोंमें मींचें पासवाली बेंचपर निश्चेष्ट सो रही है। साँस बँधे विरामसे आ जा रहा है। परिधान—वस्त्र कहीं कहींसे तनिक ही अस्त व्यस्त हुआ है। ऐसी सुखस्पर्श वायुमें नींद कैसी प्यारी लगती है, और उस प्यारी नींदकी जागते हुए चौकसी करना भी कैसा मीठा लगता है!

सत्यने सोचा, एक यह है जिसका भविष्य कैसा निश्चिन्त-सुखी है! जिसने जीवनमें आराम ही पाया और विलास ही देखा है। एक वह है, कट्टो, जिसे केवल 'न' कारकी मूर्ति बने रहकर जीवन काट जाना है। यह कैसा वैषम्य है! फिर सोचा, अब मैं क्या करूँगा? क्या मैं इस वैषम्यको बढ़ाऊँगा? या—या साम्य बढ़ाऊँगा?

अब इस प्रकारके तर्कसे, और पहले ठीक उलटे कारणसे सत्यने देखा, उसका और गरिमाका योग न हो सकेगा।

फिर वह कट्टोके बारेमें सोचने लगा। सोचा, क्या दुखियोंके प्रति हम निश्चिन्तोंका कोई कर्तव्य नहीं है? क्या संसारका सारा सुख हथिया लेना अन्याय नहीं है उनके प्रति जिन्हें उसका कण भी नहीं मिल पाया है? और कुछ नहीं तो उनके खातिर क्या हम अपना सुख कम नहीं कर सकते?.. कट्टोको इस तरह रहने देकर मैं खुद कैसे विलास-गर्तमें डब सकता हूँ?

तभी उसे एक समाधान दीखा। वह प्रसन्न हुआ। अवश्य यही होना चाहिए।

कट्टोको विधवा कहना 'विधवा' शब्दकी विडम्बना है। विधवा हो भी तो भी क्या? उसका अवश्य विवाह होगा।

इस समाधानसे उसे चैन मिला। उसका विवाह हो चुकेगा, तभी मैं विवाह करूँगा, पहले नहीं।

८

काश्मीर आ गये। वहाँ उसने विहारीको पकड़ा। विहारी वड़ा निर्द्वन्द आदमी हैं। बचपनसे ही उसे आराम और पैसा मिला है, इससे इन दोनों चीज़ोंसे उसका मन जैसे भरा हुआ है। वह इनकी ज़रा भी पर्वाह नहीं करता। वह ज़िन्दगीमें रोमांस चाहता है। जोखमको वह प्यार करता है, और मौके ढूँढ़ता है कि जोखमके काम उसे मिलें। उसके बाबूजी उसके इस स्वभावसे अप्रसन्न नहीं हैं। सीधी-भोली-चिकनी दुनियादारी, जहाँ गड्ढोंसे बच-बचकर सिर्फ पक्की बनी-बनाई सड़कपर ही चलकर संतोष मान लेना पड़ता है, कोई बहुत श्रेयकी चीज़ नहीं है,--यह बाबूजीने अपने सफल जीवनसे समझ लिया है। उन्होंने प्रतिष्ठा भी बनाई, रुपया भी पैदा किया,-- पर कुछ नहीं। जीवनमें कभी बड़ा मज़ा नहीं पाया। इससे वह विहारीको खूब रुपया उड़ाने देते हैं, और खूब मनमानी करने देते हैं।

इसीलिए विहारीका व्याह नहीं हुआ। पिता इसके सम्बन्धमें चिन्ता नहीं करना चाहते। आदमीकी तरह दुनियामें बढ़कर वही खुद अपनी जीवन-संगिनी ढूँढ ले। उनका विश्वास है, विहारी जैसे-तैसे एक ढंगके साथ दुनियामें अपनी राह तै कर जायगा,--उसके बारेमें ज्यादा परेशान होनेसे काम न चलेगा। उसको कोई बहू ला दी जायगी, तो उससे उसकी कभी न निभेगी, और खीझ-खींझ कर वह अपनी जिन्दगीको लुंज कर लेगा।

लेकिन गरिमाके बारेमें वह बड़ी सतर्कता और सोच-विचारके साथ आगे बढ़ते थे। इस तरह उसकी ओरसे लापर्वाह वह अपनेको कभी न बना सके। समझते थे, व्यक्तित्व अलग अलग तरहके होते हैं। उनकी पूर्णता भी अलग अलग राहसे ही मिलती है।

इसी विहारीपर सत्यने अपनी आस बाँधी थी। विहारी कुछ करना चाहे,--

अगर वह बुरा न हुआ, फिर चाहे कितनी ही जोखमका हो,—तो बाबूजी उसमें कभी रुकावट नहीं डालेंगे, यह सत्य जानता था। उसने बिहारीके मनमें सावधानीसे कट्टोके लिए गुदगुदी पैदा की। बिहारी बड़ी जल्दी खिच जानेको तैयार रहता है। बुराई उसमें नहीं होनी चाहिए, फिर तो बिहारीसे जो चाहे करा लो। डूबतेको बचानेके लिए वह किसी झिझकमें पड़कर देर नहीं करेगा,—फ़ौरन कूद पड़ेगा। दस क़दम दूर कूदनेके लिए सुगम किनारा होगा, तो भी वहाँ जानेको ठहरेगा नहीं। और जितना ही काम मुश्किल होता है, उतना ही तत्परता और आनन्दसे वह उसमें कूद पड़ना चाहता है।

कट्टोकी बात सुनकर उसका मन उछला। सत्यने इस ढंगसे बात रक्खी थी कि जैसे एक लड़कीके उद्धारका सवाल हैं। परिणाम जो होगा सो हो, बिहारी तैयार है। बिहारीने यह कह दिया। पर साथ ही पूछा—

"तुम्हीं क्यों नहीं बढ़ते ?"

सत्य अकचकाया।

"मैं ?···न-अ। मैं कैसे कर सकता हूँ ? तुम जानते हो, हो सकता है मेरे संबंधमें यह शुद्ध परमार्थका काम न हो।"

बिहारी इस उत्तरसे प्रसन्न हुआ। वह जानता था सत्य अब तक भी बिहारी गरिमाके सम्बन्धमें पूर्ण अनुकूल नहीं हुआ है। इस कारण सत्यकी बातपर उसे विश्वास हुआ, और उसके लिए सत्यको उसने धन्यवाद दिया।

९

सत्यके सिरसे बोझ टला। उसे विश्वास था कि कट्टोको मनाना कठिन न होगा और जब यह बात हो जायगी, तो उसे अपने सुखसे नाराज़ रहनेका मौका न रहेगा। वह भी फिर गरिमासे विवाह कर लेगा। और फिर···· लेकिन तब तक ?—तब तक नहीं।

आखिर एक दिन बाबूजीने बात छेड़ी ही।

"सत्य, एक बात कहनी है। अब तुम्हें विवाहके लिए तैयार हो जाना चाहिए।"

बिना भूमिकाके बात इस तरह दो-टूक सामने डाल दी गई तो वह अकचकाया। कहा—

'पिताजी, मैं वकालत नहीं कर रहा हूँ।'

"पिताजी" संबोधन जीवनमें बहुत कम बार उनके कानोंमें पड़ा है। सब 'बाबूजी' ही कहते हैं। इसलिए, वह बड़ा प्यारा लगा। सत्य न जाने किस झोंकमें यह कह गया था। पिता बोले, "जानता हूँ"

सत्यको अचरज हुआ, "आप जानते हैं?—कैसे?"

"होशियार-बहादुरकी बात मेरे कानोंतक पहुँची है।"

"फिर भी आप कहते हैं?"

"हाँ, कहता तो हूँ। क्या वकालतकी वजहसे मैं गिरीकोदे ना चाहता हूँ? समझ लो, वकालतको नहीं, दूँगा तो मैं तुम्हें गिरीको दूँगा। यह भी तो हो सकता है कि वकालत चले ही नहीं?"

बाबूजीके इस विश्वासपर सत्यका हृदय गद्गद हो गया। उसने भी अपना दिल खोल देना चाहा—

"एक बात है, पिताजी। गाँवमें एक लड़की है। मेरे साथ साथ बढ़ी है। उसका कुछ ठीक हो जाय तो मैं शादी करूँ। मैं तो इधर यों विलासमें पड़ जाऊँ, और वह मेरे घरके पास झुरती झुरती रहे,—न, यह मुझसे न होगा।"

बाबूजी ऐसी बातोंको पसंद तो करते हैं, पर सनक समझते हैं। दुनियामें ऐसी साधुता कहाँ कहाँ करोगे? जगह जगह उसकी जरूरत है। और पता चला नहीं कि तुम्हारी साधुतापर दावा करनेवाले ढेरों लोग इकट्ठे हो जायेंगे। इससे अच्छा है, ऐसी मीठी मीठी साधुताओंकी बहकमें आओ ही नहीं। यह बाबूजीकी राय है। पर कोई अच्छी-सी बेवकूफी करना ही चाहता है तो करे। बोले—

"तो उसके बारेमें क्या करोगे?"

"कहीं उसका ब्याह हो-हुआ जाय तो ठीक है।"

"अच्छा।"

और अच्छा कहकर बाबूजी चुप हो गए। समझ गये, इस परमार्थके कामके लिए बिहारीको ही पकाया जा रहा दीखता है। बिहारीको इसमें संतोष मिलता है, तो इसमें भी कुछ हर्ज नहीं है। पर जान पड़ता है, मुझे थोड़ी देर और भुगतना है। लड़केका थोड़ा-सा पागलपन और ठंडा होना बाकी है।

इसमें उन्हें शंका न थी कि लड़का घूमघाम कर आ गया वहीं, जहाँ वह समझते हैं। आँधी आती है, बड़ी ज़ोरकी आँधी। मालूम होता है, सारी

दुनिया उड़ जायगी। लेकिन कुछ रेत और फूसके सिवाय कुछ नहीं उड़ता। आँधी आकर चली जाती है, और दुनिया अपने काममें लग जाती है। इसी तरह यह बिना पचे विचारोंका तूफान आया है। आकर चला जायगा, और सत्य ढंग-से लग जायगा।

१०

काश्मीर स्वर्ग है। और काश्मीरका शालामार स्वर्गोद्यान। उसी स्वर्गोद्यानमें एक बड़ेसे चिनारके पेड़के नीचे सब बैठे हैं। बाहर झीलमें उनका बजरा ठहरा है।

जहाँ बैठे हैं, मखमल-सी दूबका कालीन दूरतक फैला हुआ है। सामने ही नहर है। किलोल खाती बह रही है, मछलियाँ उसमें खेल रही हैं। वह नहर बहती बहती फिर संगमरमरके प्रपातपर जा उतरती है धीरे धीरे बल खाती, इठलाती और खेलती हुई। मानो शाहंशाह शाहजहाँकी सौन्दर्य-कल्पनाधारा जलमय होकर, लहरियोंका शुभ्र-नील हलका वसन पहनकर, हमें अपनी अठखेलियाँ दिखला रही हो।

स्वर्गकी इस मनोरमताको गरिमा देख रही थी और आँखोंकी राह खींचकर अपने हृदयपर चित्रित करती जाती थी। उनको ऐसा मनोरम चित्रपट कहाँ मिला होगा!

पानी उधर खेल रहा है, विपिन इधर इतनी दूर कैसे चैनसे बैठा रह सके!

"दादा, हम सैर करेंगे।" उसने सत्यसे कहा। वह सब बात सत्यसे ही कहता है, क्योंकि सत्य उसकी बात टालता नहीं।

उँगली पकड़कर सत्य उसे सैर कराने लगा। सब दिखाया। जब लौटा तो विपिनकी दोनों जेबें और हाथ पत्थरों, फूलों और पत्तोंसे भरे थे।

यह भरा खज़ाना दिखानेके लिए दौड़ा हुआ विपिन पेड़के नीचे आया तो वहाँ कोई न था। इतनेमें सत्य भी आ पहुँचा। उसने इधर उधर देखा। विपिन अपने खज़ानेको उस दूब-कालीनपर फैलाकर उसकी देख-भालमें लग गया था।

सत्यको सहसा दीखा, पास ही गरिमा उस पेड़की तरफ़ पीठ किये अकेली एक कुंजके पत्रोंसे उलझ रही है। बोला—विपिन, देखो, यह रही तुम्हारी जीजी!

विपिन तो परमात्माकी लूटकर लाई हुई अपनी इस निधिको देखनेमें मग्न

था और अचरज मना रहा था। आवाज सुनते ही चौंककर, फिर अपना प्रशस्त खज़ाना बटोर-बटोर, जीजीके नामपर खुशीकी एक चीख़ देकर विपिन उसी ओरको भाग छूटा। सत्य भी चला।

वह मुड़ी। विपिन बेतहाशा अपनी जेबोंको सँभालता भागा चला आ रहा है। पीछे सत्य है। क्या करे?

विपिन पहुँचा—

"यह क्या कूड़ा भर लाया रे?" कहकर जेबोंकी तलाशी लेनी आरंभ कर दी। चलो, यह अच्छा काम मिल गया।

"जीजी, यह देखो, ऐसा फूल तुमने देखा है?—और इस पत्थरमें कितने रंग हैं—एक-दो-तीन, नीला भी, लाल भी, सफ़ेद भी ...!"

"देखा तुमने इसका म्यूज़ियम?" कहते हुए सत्य आ पहुँचा।

"देखो न, कैसा पागल लड़का है!"

कहा तो, पर आगे क्या कहेगी सो सोचनेमें लग गई। खज़ानेकी जाँच-पड़ताल बंद हो गई।

अगर कोई उसके जमा किये खज़ानेकी खूबी नहीं देखना चाहता, न सही। वह खुद क्यों न देख-देख कर खुश हो। विपिन वहीं बैठकर अपना अजायबघर सजानें और फैलानें लगा।

धानी साड़ीके ऊपर और कुछ नहीं है। वह साड़ी हवामें कभी कभी स्वच्छंदतासे लहरें लेनेका प्रयत्न कर रही है, और उसे दाब रखना पड़ता है। पैरोंमें जूता नहीं है, और बारीक बारीक उँगलियाँ साड़ीसे बाहर निकली हुई हैं।

सत्यनें अभी इतना ही देखा। अब ऊपर मुँह उठाया। गरिमाका चेहरा अब उस तरह न रह सका,—वह झुक गया। सिरपरका साड़ीका किनारा अस्त-व्यस्त हो पड़ा है, वेणीमें लटें कुछ इधर-उधर बिखर गई हैं। जहाँ तहाँ एकाध सूखा पत्ता बालोंके घोंसलेमें उलझ गया है।

शहरी, सभ्य, पढ़ी-लिखी लड़कीका यह वन्य रूप बड़ा मनोमुग्धकर जान पड़ा।

"गरिमा!"

वह चौंकी।

"खड़ी क्यों हो? बैठ न जाओ।"

सत्य खुद बैठ गया तो वह भी बैठ गई।

" बाबूजी कहाँ गये ?——और विहारी ? " सत्यके स्वरमें थोड़ी थोड़ी आंतरिक मुस्कानकी-सी ध्वनि थी ।

गरिमानें समझा, यह व्यंग है । उसके अकेले पनपर व्यंग है । उठकर वह चलनेको हुई ।

" क्यों...? "

" बाबूजी यहीं कहीं होंगे । देखूँ । "

" नहीं, बैठो । बाबूजी इस अकेलेपनपर नाराज़ नहीं होंगे । "

गरिमा लजा गई । सत्यने भी देखा, यह कैसी बात निकल गई !

" आओ, गरिमा, ये छोड़ो । ऐसे बातें कैसे होंगी । और हमें कुछ बातें कर लेनेकी ज़रूरत है । नहीं तो कहीं हम एक दूसरेको ग़लत समझने लगें ।"

गरिमा चुप बैठी है ।

"गरिमा, मैं वकालत नहीं कर रहा हूँ । तुमसे यह कह देना ज़रूरी है । मेरा वकालत करनेका इरादा नहीं है । क्या करूँगा, सो नहीं कह सकता । पर कभी बहुत-सा धन या मान कमा सकूँगा, ऐसी आशा नहीं है । यह हम सब लोगोंको समझ लेना चाहिए ।"

"तो मैं इस बातसे क्या करूँगी ?"

"तुम्हारा तो उससे खास सम्बन्ध है ।"

अबके फिर उसकी जुबानपर 'पिताजी' आ रहा ।

"पिताजीकी क्या मंशा है, तुम जानती हो । पर मैं तो अपनेको बहुत ही अयोग्य पाता हूँ ।"

"आप जो कहें, कह सकते हैं । पर मैं ऐसी बात नहीं सुनना चाहती ।"

"नहीं; सुनना चाहिए, समझना चाहिए । तुम न करोगी, कौन करेगा ! और मेरा साफ़ साफ़ कह देना कर्तव्य है । मैं अमीर नहीं हूँ, न हूँगा । पहली बात, मेरे-तुम्हारे जीवन-क्रममें बहुत अंतर मालूम होता है । फिर एक और बात है...।"

गरिमा जो कहो सुननेकी प्रतिक्षामें है ।

"...वह बात यह है कि पिताजीको मैं अभी कुछ जवाब नहीं दे सकता । अभी कुछ भी न समझना ठीक है ।"

इसपर तो वह चमक उठी—

"आपको यह मेरा अपमान करनेकी कैसे हिम्मत होती है ?"

यह क्या बात ! सत्य एकाएक समझा नहीं, चुप रहा ।

"मैंने आपको क्या समझा है ? और आप क्यों यह सब बातें मुझसे कहने बैठे हैं ? मैं कह रखती हूँ, मेरे अपमानकी आपकी मंशा हो भी, तो भी अधिकार बिल्कुल नहीं है ।"

सत्यने इस दृष्टिसे कभी इसपर विचार किया ही नहीं । पर गरिमाकी भावनाओंको समझकर उसने देखा, सचमुच उससे बड़े अनौचित्यका कार्य हो गया । वह अब उसके प्रतीकारको उद्यत हुआ—

"मैं. . . .मैं. . . . "

किन्तु बीचहीमें सुनना पड़ा—

"देखिए, आप यह न समझिए, आपका मुझपर बिल्कुल अधिकार है ; इससे आप धोखेमें पड़ सकते हैं ।"

सत्य विरोधमें गुनगुनाया । पर क्या कहे ?—कि यकायक—

"अच्छा, अब आप क्या अपनी कट्टोकी कुछ बात कह सकते हैं ?"

कट्टो ! यह उसे क्या जाने ! ज़रूर बिहारीकी शरारत है । बोले—

"आप कट्टोको कैसे जानती हैं ?"

" 'आप' न कहिए । 'तुम' ही ठीक है । आखिर इतनी सभ्यताकी ज़रूरत ? आप तो सभ्यताकी ज़रूरतसे अपनेको ऊँचा पहुँचा मानते हैं । . . . .हाँ, कट्टोकी बात कहिए । मैं कैसे जानी उसे, आपको इससे क्या ?"

उसने देखा, कैसे एक शहरी लड़की उन्हें निरुत्तर कर सकती है ! जब वे दोनों अकेले हैं, संसारका कोई नियम जब उनमें अन्तर डालनेको उपस्थित नहीं है, तब कई बातोंमें यह लड़की ही उनसे ऊपर है । यह सत्यने देखा और उस-पर विजय पानेकी इच्छा हो आई ।

"वह गँवई लड़की है, बड़ी पगली है, उसका क्या सुनोगी ?"

"बड़ी पगली है !—सुनूँ तो उसका ज़रा पागलपन ?"

"ऊँह छोड़िए ।"

"वह तकिया भी तो उसीका पागलपन है न !"

वह चौंका । देखा, बात बढ़ रही है ।— तो यह खोजमें भी रहती है ! तकियेका भी पता लगा रक्खा है ! यह बात है ! मेरा तो अधिकार कुछ है

नहीं, अपने अधिकारकी सतर्कतासे रक्षा भी करनी आरम्भ कर दी ! पर अब वह बातमें कहाँतक झुकता जाय ? बोला—

"हाँ, है तो।"

"है तो ?—बड़े ठंडे दिलसे कहते हैं यह आप !"

"नहीं तो क्या. . . .।"

"अच्छा, जाने दो" गरिमाने कहा और तभी एक ताज़े उठे हुए भावसे उसका चेहरा चमक गया, पूछा, "अच्छा, मैं वैसी ही बन जाऊँ तो कैसा ?.. तुम्हें अच्छा लगेगा ?"

"तुम बन नहीं सकतीं।"

"बन सकती हूँ, यही तो तुम जानते नहीं।"

'आप'से 'तुम' पर वह कब उतर आई थी सो उसे पता नहीं चला।

"कैसे ?"

"ऐसे—"

कहकर वह झटसे भाग छूटी और पासके एक दरख़्तपर चढ़ गई। जैसे अभी बन्दरकी आत्मा उसमें आ गई हो ! सत्य भी उस दरख़्तके नीचे पहुँच गया। पहुँचना था कि उसके सिरपर सूखे पत्तों और छोटी-छोटी टहनियोंकी बारिश हो पड़ी।

"अब कैसा—?" सत्यसे पूछा गया।

"अब मैं पछताऊँगा।" सत्यने कहा।

"पछताना नहीं। कट्टोको दुनियामें सब कुछ न मानने लगना। तकियेकी बात है तो आज एक मुझसे ले लेना। तैयार रक्खा है।"

सत्यको लगा जैसे अब वह यही करेगा। कट्टोको भूल जायगा।

गरिमा उतरी। झपटकर विपिनको साथ लिया। हँसती-खुशती एक हाथमें सत्य और दूसरेसे विपिनको पकड़कर मानों उड़ाए ले चली। पर बाग़के दर्वाज़े पर पहुँचकर एक अँगुली मुँहपर रखकर बोली—'बस, अब चुप !'

फिर वह भारी-भरकम गरिमा अपने बजरेमें पहुँची। बाबूजी और बिहारी वहीं थे।

काश्मीरसे लौटकर बिहारीका विवाह सम्पन्न करनेकी इच्छासे सत्य सीधा अपने गाँव पहुँचा।

आये देर नहीं हुई कि कट्टो भागी भागी आई। धोती मैली है, बाल बिखरे हैं, पसीना आ रहा है, हाँफ रही है। हाथ आटेमें सने हैं।

"आ गये!"

"हाँ, आ गया।"

"बड़ी जल्दी आ गये! छुट्टी हो गई?"

"बस, अब छुट्टी ही है।"

"अच्छा तो मैं अभी आऊँगी। रोटी बनाकर। अम्माँका जी अच्छा नहीं है। सो मैं ही कई रोज़से रोटी बनाती हूँ। सुना, तो ऐसी ही भाग आई।.. बिगड़ो मत, अबके ठीक होके आऊँगी।'

कहकर रुकी नहीं, भाग गई। मास्टरजी सोचमें पड़ गये। मनमें ही बोले, 'कट्टो, ऐसी तू कबतक रहेगी? नादान लड़की, क्या तू नहीं जानती, तेरे आगे क्या है? नहीं जानती तब तक ही अच्छा है, नहीं तो रोनेके सिवाय तुझे कुछ काम नहीं रहेगा।'

पर मास्टरजीने बीड़ा उठाया है तो करके ही छोड़ेंगे। लेकिन बिहारीकी चर्चा कैसे चलायें? यह सोचकर उन्हें लाज आती थी। बात कैसे बढ़ानी होगी?

थोड़ी ही देरमें कट्टो फिर आ पहुँची। क्या निबट आई? नहीं तो। कपड़े तो वैसे ही हैं, वही हाल है।

"चलो, आज हमारे यहाँ खाने चलो। माँजीसे मैं कह आई हूँ।"

कैसी लड़की है! माँसे भी पूछे आई! न वक़्त देखा न अपना हाल! जो सूझा, कर डाला,—न सोच, न विचार, न आगा न पीछा!

मास्टरजीने कहा—चलो।

मास्टरजीने सोचा है अपनी बातके लिए इससे अनुकूल कोई अवसर न होगा जब वह परोस रही होगी।

खानेको बैठे। बहुतोंका आतिथ्य भुगता है, पर यहाँ तो आतिथ्यका नाम ही नहीं। ऐसा निमन्त्रण उन्होंने पहला ही देखा। अम्माँ तो पड़ी हैं, कुछ मदद कर नहीं सकतीं। कट्टो सीधी चूल्हेके पास जा पहुँची। तवा थाम दिया था। चूल्हा सुलगाकर उसपर तवा रखते हुए कहा—

"बैठो न, थाली ले लो।"

मास्टर साहबको अपने आप, जहाँ दीखे वहाँसे, थाली ले लेनी पड़ी और अपनी समझके मुताबिक़ जगहपर जा बैठना पड़ा।

"देखो, वह पटड़ा है और वहाँ पानी रक्खा है।"

यह कसरत भी भुगती, पर यह सब बड़ा अच्छा लगा। ऐसा बेतकल्लुफ़ीका बर्ताव, इच्छा रहते भी अभी कभी न कर पाये थे।

"देखो, मेरी रोटी जल जायगी, नहीं तो मैं ही दे देती।"

"और मैंने ही जो ले लिया।"

"यही तो।....ज़रा थाली आगेको लाना....और....अरे, नहीं नहीं, चौकेसे दूर!"

"यह बड़ी पाबन्दी है कट्टो!"

"अम्माँका चौका है, मेरा नहीं। मैं तो करती नहीं, पर जिसे बड़े चाहें वह तो कर देना अच्छा ही है।"

"मैं कब कहता हूँ बुरा है।"

"हाँ, कभी मत कहना बुरा है।"

इस लड़कीकी बात तो देखो! मास्टरसे गुरुआनी-सी बात करती है! पर मास्टरजीको यह शिक्षा बड़ी मीठी लगी।

आलूका साग और पराँवठे दे दिये गये। उनके साथ नमक तो दिया, अँचार भी, पर क्षमा-याचना एक भी शब्द नहीं,—जैसे छत्तीस व्यंजन परोस-कर सेठ लोग हाथ जोड़कर पेश कर दिया करते हैं।

"वक़्त तो था नहीं और कुछ बनाती, और तुम्हें रोटी खिलानी थी ज़रूर।....साग और दूँ?....भूखे रहे तो मेरी क़सम।"

मास्टरजीने बड़े चावसे खाया। जो कहे, उन्हें स्वाद नहीं आया, वह महा झूठा।

मास्टरजी अपनी बात शुरू करनेकी फ़िक्रमें थे।

"कट्टो, हमारी भी बात सुनो।"

"सुनती हूँ—यह पराँवठा लो—क्या कहते हो?"

"यह पेटपर जुल्म ठीक नहीं।....हाँ, मेरा एक दोस्त है।...."

"देखो, मैं सुनती हूँ—पराँवठा जल जायगा तो?"

"अभी जो गया था मैं, तो वह मेरे साथ था।"

"कौन ?"

"वही मेरा दोस्त।"

"कौन दोस्त ?....कहाँ....ठहरो, मेरा प....।"

"तुम सुनती तो हो नहीं....।"

"सुनती हूँ। निबटानेके बाद मन लगाकर सुनूँगी। अभी तो देखो....।"

पहले प्रयत्नमें इस अजीब ढङ्गसे निष्फल होना शुभ-लक्षण न जान पड़ा। अगर कृतकार्य न हुए तो....?

निबट-निबटाकर वह आई। नई धोती पहने है, बाल सँवारे हुए है, सकुची सकुची आ बैठी है। अबके अपने साथ थोड़ी-सी लाज लेती आई है।

मास्टरजीने देखा यह भी मौक़ा बेढङ्गा हो गया है। ऐसे भारी भारी वातावरणमें बातका रुख बिगड़ न जाय! तो प्रयत्न तो करेंगे ही।

"तुम कुछ कहते थे," कट्टोने ही शुरू किया।

"हाँ, कट्टो एक बात कहनी है।"

मास्टरजीने विचित्र दृष्टिसे देखा। कट्टो ज़रा झेंपी।

"कट्टो, तुम्हारी सहेली सरमो कहाँ गई ?"

"उसका व्याह हो गया। सुसराल है।"

"और चिरोंजी ?"

"उसका तो व्याह अभी वैशाखमें होके चुका—तुम्हें नहीं मालूम ?"

"कट्टो !...."

कट्टोने देखा कुछ बात बड़ी देरसे गले तक आई हुई है और वहाँ अटक रही है। अब वह बात निकल ही आना चाहिए। कहा, "क्या ?...."

आवाज़ गिर गई,—कहीं कोई सुन न ले! फिर मानों क्षमा माँगतेसे सत्यके मुँहसे शब्द निकले—

"कट्टो, तुम्हारा ब्याह....!"

कट्टोके मर्ममें दंश देना क्या उन्हींके भाग्यमें लिखा था ?

कट्टो सुन्न स्तब्ध बैठी रही। धीरे धीरे, धीरे धीरे आँखें उठाई—वही आँखें! पलकें उनपर झुकी हुई हैं, और वहाँ आर्द्रता फैली हुई है! फिर धीरे धीरे, धीरे धीरे उन्हें गिरा लिया।

"कट्टो, मेरा एक दोस्त है।...."

जो चाहे कहे जाओ,—कट्टोको कुछ मतलब नहीं।

"कट्टो मेरा एक दोस्त है। मेरे जितना ही पढ़ा है। हम दोनों साथ पढ़े हैं। बड़ा अच्छा है, कट्टो मेरी बात मानों, बड़ा अच्छा है। बाप वकील है, पैसे-वाले हैं, बड़े आदमी हैं। कट्टो, वह तुम्हें रानी बनाकर रक्खेगा। मैं इसका ज़ामिन हूँ। कट्टो!—कट्टो! मानो तो....?

"कट्टो क्या कहे, कैसे कहे? उसके पास वही आँखें हैं जिन्हें उठा सकती है और गिरा सकती है। उन्हींमें पढ़ लो क्या लिखा है,—वही उसका उत्तर है।

"कट्टो, मेरी बात नहीं मानोगी? मेरी एक बात!—उसे टाल दोगी? मुझे फिर तुमसे कुछ कहना नहीं रह जायगा।"

"उत्तरमें मिला मूक मौन और आँखोंमें भरी विवशता और आर्द्रता। उन्हें पढ़नेमें कौन भूल कर सकता है?

"अब तुम जानो। तुम नहीं जानतीं, तुम्हारे आगे क्या है। फिर कभी इस क्षणके लिए पछताओ तो मुझे दोष न देना!"

आँखोंने कहा, 'मैं किसीको दोष नहीं देती। पर तुम,—तुम मुझसे ऐसी बातें न कहो।"

"जैसी मर्जी। भगवान् तुम्हारा भला करें।"

इसके बाद दोनों चुप बैठे रहे। फिर उस नीरव त्रास-भरे सन्नाटेको भङ्ग कर कट्टोने पूछा, जाऊँ?

"जाओ।"

"जाऊँ?"

"जाओ।"

"जाऊँ?"

"जाओ।"

वह चली गई।

१२

मनमें एक बात उठी और गिरी, उठी और गिरी। बार बार गिराया गया, लेकिन फिर-फिर वह उठ आती है।

कट्टोका शून्य, नष्ट भविष्य आँखोंके सामनेसे हटकर नहीं जाता। कैसा वह हा-हा-कारसे भरा हुआ है! और वह?—आगे आते विलासको आमंत्रण दे रहा है!

एक बार फिर बुलाकर चेष्टा कर देखें। बुलाया— वह आई।

साँझ गाढ़ी होती जा रही है। प्रकाश मटमैला हो चला है। कमरेमें सूनी घड़ियाँ संध्याके अँधियारेमें डोलती डोलती मानों ठहर गई हैं। सत्य एक कुर्सीपर बैठे हैं। वह भी जैसे जड़ जगत्के ही पदार्थ हैं, ऐसे निश्चेष्ट और निस्पंद बैठे हैं।

वायु जैसे प्रविष्ट हो ऐसे चुपचुपाते निरपेक्ष भावसे कट्टोने वहाँ प्रवेश किया। आकर खड़ी हो गई।

तब उठकर सत्यने कमरेका एक झरोखा खोल दिया। अस्तोन्मुख सूर्यकी एक अरुण आभा कट्टोके चेहरेको उजला कर गई। आसपासकी और चीजोंको देखते कट्टोका वह चेहरा जगमगाता दीखने लगा।

सत्यने देखा,—आँखें आँसुओंसे खूब धोई गई हैं, और फूल आई हैं। जैसे फूली-फूली धुली कमलकी दो लाल पँखुड़ियाँ हों। लेकिन उनके सारे भेद और सारे स्नेहको पलकें मज़बूतीसे ढँके हुए हैं। सत्यकी दृष्टि उन झँपते-हुए कपाटोंतक पहुँचती है, भीतर नहीं पहुँच पाती, और लौट आती हैं। आज सत्य इनके भेदको प्राप्त कर अपने हृदयके भीतर छिपा लेना चाहता है। कोई उसे नहीं देख पायेगा।

आज यह अ-मानव मूर्ति, इस अँधेरे वातावरणमें, मानों सत्यकी आत्माको प्रकाश दिखलानेके लिए आई है।

मूर्तिने मुँह ऊपरको उठाया। तभी, जैसे बादल सामनेसे फट गया हो, एक तेज सफ़ेद चमकती हुई किरण भरपूर उस उठे हुए मुखपर पड़ी।

सत्यने एक निगाह देखा और सहम गया। यह तो कट्टोका मुँह नहीं है,—कुछ और ही है। चंचलतासे नहीं, सुष्ठ गाँभीर्यसे भरा बालोचित औत्सुक्यकी जगह स्नेहाभिषिक्त प्रणयाकांक्षासे खिलता हुआ यह विह्वलता बरसाता चेहरा कट्टोका नहीं है!

उसी चेहरेने कहा—क्या है?

"कट्टो, मेरी बात नहीं मानोगी ?"

"मानूँगी। सब बात मानूँगी। बस यही नहीं।"

"यही नहीं ?—क्यों ?"

"क्यों ?—सो मत पूछो। इसलिए कि मेरे भाग्यमें नहीं है। मैं अभागिन हूँ।"

"कट्टो,—देखो—"

कट्टोने देखा। भरपूर देखा।

सत्यपर उस समय एक अलौकिक-सी दीप्ति छा गई थी। कुछ भीतर हो गया है, जिसने इसकी देहको दिपा दिया है।

"कट्टो, मुझे देखो। भली भाँति देखो।—देखती हो ?"

"देखती हूँ।"

"जाने दो सब बात। मैंने तुम्हें बहुत दुःख पहुँचाया। अब उसका प्रतीकार करूँगा।"

"नहीं...नहीं..."

"देख लिया ?—अब बोलो, क्या कहती हो ? मुझे-मुझे-क्या कहती हो ?"

कुछ नहीं कहती। सूरज छिप गया है। बस, वह अँधेरेमें अपने मास्टरके पैर टटोल लेना चाहती है।

पैरोंको पाकर कट्टोने अश्रु-जलसे उनका खूब ही अभिसिंचन किया।

१३

सत्य वहाँ ठहर न सके। उनके प्राणोंमें जो एक ज्वार उठा है,—मीठे दर्दका एक तूफ़ान-सा,—वह दीवारोंसे घिरे उस कमरेमें झेला नहीं जा सकेगा। पैर आँसुओंसे धोये जा रहे हैं, और मन देहके बंधनमेंसे फट निकलकर बाहर रहना चाहता है। कमरेमेंसे निकल पड़े, सुध-बुध जैसे खो गई, पता नहीं कहाँ जाकर क्या करेंगे ? पास ही गंगाकी नहर बहती है। वहीं पहुँचे। आकाश चारों ओर बिना सीमाका आकाश फैला है, जैसे माँका अंचल फैला हो। हवा हल्की हल्की बह रही है, मानों उसी माँकी ठंडी उसासें हैं। पास हीमें है गहन रोती जाती हुई जल-धारा, मानों अपने बच्चोंके छोटे सुखों और बड़े दुःखों उसी माँके बहाए आसुओंकी धारा हो। माँके इस अंकमें आकर, जो अब सा

सृष्टिको थपकियाँ दे-देकर सुला रहा है, और उनके ऊपर अपना तारोंसे छिटका अंचल तानकर, निरंतर जागरूक, उनकी नींदकी चौकसी कर रहा है,—इसे अंकमें आकर उसे कुछ चैन-सा मिला। आनंद-व्यथामें बोध प्राप्त हुआ। उनकी सावधानता लौट आई। मालूम हुआ, अब वह नींद चाहते हैं। जीवनके चूडांत उत्कर्ष-स्तरसे खिसक आये हैं, तो थकान हो आई है। घर आकर गाढ़ी नींदमें सो रहे।

❀ ❀ ❀

इधर कट्टो सौभाग्यके पहाड़के नीचे दबकर अचेतन-सी हो गई। जिसके पास तक स्वप्नमें भी पहुँचनेकी हिम्मत नहीं हुई थी, वही सौभाग्य जब एकदम इस तरह सिरपर बरस पड़ा तो कट्टो विह्वल हुई और फिर बेसुध हो गई। सुध आई तो मास्टर साहब जा चुके थे, वह अकेली ईंटके फ़र्शको भिगोती हुई पड़ी थी। उठी, अंधेरा था, अंधेरेमें ही धोतीका किनारा माथेके आगेतक सरका लिया, और टटोलती टटोलती दर्वाज़ेकी ओर बढ़ी।

कहीं कोई देख न ले? इस सौभाग्यको किसीकी नजर नहीं लगने पायेगी। आज उसमें न जाने कहाँकी लाज समा गई है। धोतीके बाहर अपना अंगठा दिख जाता है तो सिहर उठती है, सिमट कर वहीं बैठ जानेको जी होता है। आज वह अपने सौभाग्यको साथ लेकर, मन होता है, कहीं गड़कर सो जाय कि फिर उठे ही नहीं; कहीं दुबक जाय कि फिर दीखे ही नहीं। सिमटी-सिमटाई, सहमी-सहमी अचक-से घरमें घुसी और बत्ती जलाकर खाटपर बैठ गई।

रात-भर नींद नहीं आई। उसने भी व्यर्थ चेष्टा नहीं की। सारी रात न जाने कहाँ कहाँ उड़ती रही, धरतीपर तो एक क्षण भी टिककर ठहर सकी नहीं।

ओहो, आज उसका छोटा-सा मन फूलकर कैसा हो गया है, मानों सारे विश्वको अपने उछाहसे और अपने प्रणयसे प्लावित कर देगा?

सारी रात जगकर उसनें एक बात तय की। कल पर्वके मेलेमें वह जरूर जायगी। बहुत जरूरी तौर पर उसे कुछ चीजें खरीद लानी हैं। मँगा तो सकती नहीं, पता जो चल जायगा!

बारह-एक बजेसे इस बातकी टोहमें है कि कोई पर्वीजाने वाला जगे और यह अपने जानेकी विधि ठीक कर ले।

क्या लायेगी?—ये चूड़ियाँ लाल, एक बिंदी-टिकियोंकी डिबिया, एक... ऊँह! वह कैसे बताये? याद नहीं।...लाज आती है।...कल देखा जायगा।

और बात देखो। कैमी गंगाकी पर्वी आई है,—ठीक जब कि उसके जीवन का पर्व अचानक ही आ पहुँचा है। उसके मन में संदेह नहीं, यह पर्वीका ही प्रसाद है।

आखिर रात कटी और औरतोंकी तैयारियोंकी धूम सुन पड़ी। पड़ोस अग्रवाल बनियोंके यहाँसे कई जा रही हैं,—उन्हींके साथ जाना उसने भी ठीक कर लिया।

१४

सत्य जागे तो नये लोकमें जागे। कल बीत गया, आज नया दिन आया। यह नया फटता हुआ दिन, रोज़के नित्य-नियमित कार्य और आजके विशिष्ट कार्य आदि आदि उनके मस्तकपर क़ब्ज़ा जमा बैठे हैं। कल शाम घटना किसी भूले कोनेमें पड़ गई है। कल कुछ हो तो गया है, पर उनके सामने धुंधला-सा है। अभी अवकाश नहीं है कि वह उसे स्पष्ट देखें। और कामोंकी भीड़ भी तो है जिसे निपटाना है।

काम खतम होते जा रहे हैं और वह नये नये पैदा करते जा रहे हैं। यह है कि कलकी घटनाकी स्मृति, जो और सब बातोंको ठेल-ठालकर अपने सबसे आगे आ खड़ा होना चाहती है,—उसे सामने पाने और सामने सत्य डरते हैं। लेकिन ज़बर्दस्तीकी व्यस्तता ज्यादे नहीं टिक सकती। खाकर अपने कमरेमें आये, तो कलकी घटनाकी एक एक बात उठकर उनके सामने आ खड़ी होने लगी। सबको एक बार देख गये, कुछ समझ पाये कि यह सब क्या और कैसे हुआ, और कुछ कुछ अपने पर शर्माये। उसकी वास्तविकतापर संदेह होने लगा।

यह क्या हुआ? बात तो बिहारीकी करने चले थे। सो तो न हुआ, कैसे सामने पड़ गया? बिहारी क्या सोचेगा?..आखिर मैंने क्या कहा? कि वह मुझे स्वीकार करती है या नहीं? वह रो पड़ी, स्वीकार करती है। उसने ऐसा कहा तो नहीं!······तो क्या मैं उसे अपनाऊँगा?—अपनाना होगा?

सोचकर देखा, बात कुछ ऐसी ही-सी प्रतीत होती है।

तब बहुत-सी बातें बढ़-बढ़कर विरोधमें खड़ी होने लगीं। बाबूजी गरिमा!.. बाबूजी भी कुछ नहीं; और गरिमा!—गरिमा भी, खैर, देखा जायगा! लेकिन—लेकिन—?

इस बहुत बड़े 'लेकिन' में कई बातें थीं,—यह कैसी अजीब-सी बात होगी?—लोग क्या कहेंगे? बिरादरी और गाँवमें क्या हैसियत रह जायगी?—यह सब होगा कैसे? और—कट्टोकी माँ!—फिर, फिर, फिर मेरी माँ!

यहाँ वह बिलकुल रुक गया। यहाँ मानों ऐसा प्रतिबंध मिला जिसके आगे गति नहीं, जिसे लाँघ सकता ही नहीं।

माँ यह कभी नहीं होने देगी। सुनेगी तो मर जायगी। थोड़ी-सी बातोंपर वह जिंदा रहती है। लड़केको इतनी तो रस्सो दी, पर यह अधर्म नहीं होने देगी। रोकेगी तो कैसे—अगर मैं अड़ जाऊँ?—पर जान ज़रूर दे देगी, इसमें शक नहीं। मौतसे जब वह कुछ वर्षोंके अंतरपर ही रह गई है, तो क्या मैं ही उसकी बची-खुची जिन्दगीके ये बरस छीन लूँ और उसे अपने ही हाथोंसे मौत के मुँहमें ढकेल दूँ?

पर...पर कल क्या हो गया है, और...कट्टो!

इसपर उसे ध्यान हुआ कि उसे सुबह से देखा नहीं। अभी जाकर वह कट्टोसे सब बातें साफ़ कर लेगा। कट्टोके घरपर जाकर पुकारा—कट्टो!

कट्टोकी माँकी आवाज़ आई—कौन है?

"मैं हूँ, अम्माँ"

"आओ, बेटा।"

भीतर पता चला, कट्टो गंगास्नानको गई है। सत्यने देखा माँ जिंदगीके दूसरे किनारेके पास आती जा रही हैं। न जाने कब यह माँ भी कट्टोसे छिन जाय!

"बैठो, बेटा!..देखो, वह लड़की गंगा चली गई है। मुझमें अब कस रह नहीं गया, काम नहीं होता। हाथ काँपते हैं,—जिन्दगी-भर काम करते रहे हैं, अब काँपते हैं तो उनका क्या दोष? लड़की नहीं जाती तो क्या था? पर वह अपनी ही चलाती है। बार बार कह चुकी हूँ, देख ऐसे दुख देखेगी। दुनियासे नीचे होकर रहना अच्छा। मेरे पीछे तेरा कोई सहाई नहीं होगा। तब तू मेरी सीख याद करेगी। अब तो तेरी निभे चली जाती है। पर दुनियामें और माँ तेरे थोड़े ही बैठो है। इसपर वह रोने लगती है! कहती है, 'अम्माँ, तू ऐसा मत कह।

में तेरे बाद बहुत थोड़ी जीऊँगी। तेरे सामने तो मैं अपनी चला लूँ, फिर चलानेको कब मिलेगा!'...बेटा, वह अजीब लड़की है। फिर फूट-फूटकर रोने लगती है। मेरे पैरोंमें सिर रख देती है, कहती है, 'इस सिरमें मेरे एक ठोकर तो दे, माँ, मैं ठीक हो जाऊँगी'—बेटा मैं उसे दोस नहीं देती। अब दस दिनसे तो मैंने काम छुआ नहीं, वही सब करती थी। नेक आलस नहीं, नेक कलेस नहीं। फिर ऊपरसे मेरी टहल। ये उसके कामके दिन हैं, बेटा?—और बच्चीं इतनी पढ़ती हैं, खेलती हैं और खाती हैं। पर इन बातोंमें क्या? काम ऐसी मुस्तैदीसे करती है, बेटा, कि मैं क्या कहूँ। किसी घरमें होती तो रानी होती। पर रोयेसे क्या? जो लिखा था, सो हुआ। जो लिखा था सो भुगता ..बेटा, मैं उसे बिल्कुल दोस नही देती। गंगा गई है, चलो सुस्थ हो आयगी। इतने काममें नेक बिसराम भी तो चाहिए। आयगी, तो फिर जुट जायगी। बेटा, एक बात कहूँ? कहना बिरथा तो है ही, पर कहे बिना रहा नहीं जाता। बेटा, वह तेरी बड़ी तारीफ़ करती है। कहती अघाती नहीं। सुपनेमें भी उसे वही सुन लो। बेटा, बेटा देख, मेरे पीछे उसकी खबरदारी रखियो। ..मैं तेरी माँ ही सरीखी हूँ। तू नहीं होता तो..तो..मैं....उसे जहर ही दे जाती। दुनिया ऐसी बुरी है, बेटा कि क्या कहा जाय। तेरे जैसे यहाँ बिरले होते हैं,—रतन होते हैं। उनपर ही यह टिकी है, नहीं तो डूब जाती। तेरे ही मुझे धीरज है।"

विपदाकी यह कहानी सत्य नतमस्तक हो कर्तव्यसे विमुख होते हुए अपने मनके लिये उपदेश-मन्त्रके रूपमें स्वीकार कर रहा था। अपनी अकेली बेटीको जो विधवा है और बच्ची है,—इस चूसनेकी घात लगाये बैठी दुनियामें अकेली छोड़ जानेकी तैयारी करती हुई दुखिया माँके कलेजेसे निकला यह दर्द उसने वरदानके रूपमें स्वीकार किया। प्रार्थना की, परमात्मा उसे इसके योग्य बनाये। प्रार्थना की कि उसे अपने सकल्पमें स्थिरता और सामर्थ्य दे। जिस बातको उठानेके ख्यालसे यहाँ आया था, उसे वहा दिया।

माँने फिर कहा—अरे सत्य, तेरा ब्याह कब होगा? सुनते हैं, लड़की खूब लिख गई है। वह तो कह रहे हैं, पर तू ही मना कर रहा है। क्यों रे, यह दर्द

खीरके भोजनमें यह नोनकी अनी मुँह बिगाड़ गई। कड़वापन फैल गया। उसी कड़वी मनस्थितिमें कड़वाहटके साथ कहा—

"अम्माँ, उसने फिर यहाँ न आने दिया तो ?"

"अरे, कैसी बात करता है रे !"

"अम्माँ, मैं तो गाँवका हूँ, वह शहरकी है।"

"हिश्-श्-त !"

"अम्माँ, मैं तो अभी करता नहीं। करूँगा इसका भी क्या पता ?"

"मैं तो अपने लिए कहती हूँ रे। कट्टो,–एक बात कहूँ, तैंने 'कट्टो' नाम बड़ा अच्छा रक्खा, है वह कट्टो ही है,––कट्टोको एक जीजी मिल जायगी। तू सदा उसे पढ़ानेको थोड़े ही बैठा रहेगा, अपने काम पर लगेगा।–बस, वह इसे पढ़ाया करेगी, शऊर सिखायगी और यह उसकी टहल करेगी। मैं उसे सब समझा जाऊँगी। नेक बेअदबी करे, आनाकानी करे, उसे काट डालना। पर रखना उसे अच्छी तरह।"

"देखो, अम्माँ, क्या होता है। जो होगा सो होगा। और सब अच्छा ही होगा। पर, अम्माँ, कहता हूँ, तुम्हारी कट्टोको कुछ मुश्किल नहीं पड़ने दूँगा।"

"नहीं। कट्टो तब तक खुश नहीं होगी जब तक तू व्याह न करेगा। वह अभीसे कह रही है,––जीजी आयगी तो वह उससे पढ़ा करेगी और उसकी सेवकाई करेगी।"

"अम्माँ....।"

वह इस बातका प्रतिकार करना चाहता है। क्या वह नहीं जानता कि इससे भी बड़ी खुशी उसके भाग्यमें हो सकती है। क्या वह कट्टोको नहीं जानता कि उसकी बड़ी खुशी किस बातमें होगी ? और क्या वह उसीके लिए नहीं तैयार हो रहा है ? पर उसने कहा, 'अम्माँ'–और वह रुक गया। जैसे किसीने ज़ुबानको पकड़ लिया, 'यह क्या कहता है ?–अम्माँ इस बातपर क्या सोचेंगी ?'

लेकिन असमाप्त बातका ध्यान कर वह अपनेसे प्रसन्न हुआ। उसीके आवेशमें अटकी बातको ख़तम करते हुए कुछ हँसकर बोला––

"अम्माँ,....कट्टोकी जीजी आई, और उसने कट्टोको प्यार नहीं किया तो मैं उसका सिर तोड़ दूँगा।"

"और कट्टोने गड़बड़ी की तो उसका भी सिर तोड़ देना, मैं कहे देती हूँ। कहीं भी हुई, मैं इससे बड़ी खुश हूँगी।"

माँकी बातोंसे उसने बहुत कुछ दृढ़ता पा ली और स्वस्थचितता भी। तब कुछ देर और ठहरकर और माँको हँसा-हँसाकर वह घर आया।

१६

पुरुष बनाता है, विधाता बिगाड़ देता है,—अँग्रेज़ीकीएक कहावत है। संशोधन कर यह भी किया जा सकता है,—पुरुष बनाता है, स्त्री बिगाड़ देती है। तब भी कहावतमें कम तथ्य या कम रस नहीं रहता। बात वास्तवमें यह है कि पुरुष कम बनाता या बिगाड़ता है। इसी तरह पुरुष कुछ नहीं बनाता-बिगाड़ता, जो कुछ बनाती और बिगाड़ती है, स्त्री ही। स्त्री ही व्यक्तिको बनाती है; घरको,—कुटुम्बको बनाती है; जाति और देशको भी, मैं कहता हूँ, स्त्री ही बनाती है। फिर इन्हें बिगाड़ती भी वही है। आनन्द भी वही और कलह भी; हराव भी और उजाड़ भी; दूध भी और खून भी; रोटी भी और स्कीमें भी और फिर आपकी मरम्मत और श्रेष्ठता भी,—सब कुछ स्त्री ही बनाती है। धर्म स्त्रीपर टिका है, सभ्यता स्त्रीपर निर्भर है, और फैशनकी जड़ भी वही है। बात क्यों बढ़ाओ, एक शब्दमें कहो,—दुनिया स्त्रीपर टिकी है। जो आँखोंसे देखते हैं, चुपचाप इस तथ्यको स्वीकार कर, दबके बैठे रहते हैं, ज्यादे चूँ नहीं करते। जिनके आँखें ही नहीं वह मानें या न मानें, हमारी बलासे।

सत्य कट्टो और गरिमाके बीचमें इधरसे उधर टकरा रहा है। अभी कुछ स्थिर कर पाया था कि कट्टोकी माँने ढा दिया, वहाँसे कुछ स्थिर करके चला तो यहाँ अपनी माँसे मुकाबला हुआ।

खाना खिलाते-खिलाते माँने कहा—सत्य ब्याह अब और नहीं टल सकता।

सत्यने कुछ गुनगुन किया।

"नहीं। बहुत देखा। अब तुझे मेरी माननी पड़ेगी।"

"अम्माँ, मैं.... ।"

"मैं-मैं कुछ नहीं। जो कह दिया, बस।"

"मैं नहीं कर सकता; माँ, तुम जानती नहीं।"

"क्या नहीं जानती ?"

"कुछ नहीं, लेकिन..।"

"क्या लड़कीमें कुछ है ?"

"नहीं नहीं, माँ। लेकिन...."

"फिर वही। मैं जानती हूँ, लड़की बड़ी अच्छी है। तू भी उसे चाहता है। मैं और कुछ नहीं सुन सकती।"

"माँ, मैं नहीं कर सकता।"

"नहीं कर सकता! क्यों?—मैं सुनूँ तो।"

"मैं....मैं...."

"कुछ बोलता है नहीं,—कहता है, नहीं कर सकता!"

"माँ,....मैं...."

"—नहीं करता तो जी चाहा कर। यह माँ भी तेरी ज्यादे नहीं बैठी रहेगी।"

फिर उमड़न आई। माँका मुँह बिगड़ा, हिला। सत्य रोना नहीं झेल सकेगा। बोला—माँ,....।

"मैंने क्या किया जो अपनी बहूका मुँह नहीं देखा। हाय, ऐसे ही मर जाऊँगी!"

अब माँ फूट पड़ी। सत्य चलनेको हुआ,—ठहरा कैसे रह सकता था? खाना छोड़ उठा, हाथ धोये,—तब माँने एक चिट्ठी जो बराबर उनके हाथोंमें थी सत्यके पास फेंक दी।

सत्यने देखा, बिहारीकी चिट्ठी है। माँके नाम है। बिहारी दो-एक रोजमें यहाँ पहुँच जायगा। बाबूजी शादीका सब कुछ ठीक-ठाक कर लेना चाहते हैं। इसी लिए बिहारी आ रहा है।

यह जानकर सत्यपर बर्फ़-सा पड़ गया। बिहारीसे किस मुंहसे मिलेगा! और शादीका कैसे क्या होगा! सिरको पीड़ाको हाथोंमें लेकर खाटपर पड़ रहा और सो गया।

१६

कट्टो गंगाजीसे बड़ी बड़ी चीज़े लेकर लौट आई है। अम्माँके पास आई—

"अम्माँ, मैं गंगा चली गई, तुम बिगड़ी तो नहीं? तकलीफ़ तो हुई होगी। पर अम्माँ, पर्वी अबके ज़रूर नहाना चाहती थी। अब कहीं नहीं जाऊंगी।"

"बेटा, कुछ नहीं। पीछे तेरे मास्टर आये थे। मैंने तेरी बात कह दी।"

"क्या अम्माँ ?"

"यही कि तेरी जीजी झटपट ले आयें, तू अब उस से पढ़ना चाहती है।"

ओहो, एक भेदकी बात कट्टोके पास है! अम्माँ जानती भी नहीं। इस विशिष्ट-अधिकारपर कट्टो गर्वसे भर रही है। बोली—

"अम्माँ, तो उन्होंने क्या कहा ?"

"कहा क्या ?—तेरा मास्टर अजीब है, कट्टो। बोला, देखा जायगा, अभी जल्दी काहेकी है। कट्टो, क्या पता वह शायद ऐसा ही रह जाय!"

हाँ, कट्टोका मास्टर अजीब है पर यह माँ क्या जाने उसका अजीबपना!

"कट्टो, मेरी बातपर वह कहता था कि कभी तेरी जीजी आई भी और उसने तुझे पढ़ानेमें यह वह किया तो सिर फोड़ दूँगा।"

कट्टो बहुत सुन चुकी, आगे और कुछ सुनना नहीं चाहती। पूछा—

"अम्माँ, आज क्या राँधूँ ?—चावल ?"

"जो चाहे।"

वह भाग गई। भागकर चौकेमें नहीं गई, अपने कमरेमें आई। वहाँ एक तेलसे चिकने हो रहे आलेमें अभी अभी ताज़ी ताज़ी बिसातीसे ख़रीदी एक टिकुलीकी डिबिया, एक छोटा-सा दर्पन, एक राधा-किसनकी तस्वीर,—ऐसी ऊट-पटाँग चीज़ें सजाकर रख दी हैं। वहाँ आकर, उस छोटेसे दर्पनको लेकर, दोनों भौंहोंके बीचोबीच, ज़रा ऊपरको, सीकसे उस डिबियाँमेंसे, बड़ी नन्हींसी एक टिकुली लगा ली। देखती रही,—कैसी यह लाल लाल बिन्दी काली पड़ती जा रही है!

तभी दर्पनको फेंक देना पड़ा और धोतीके छोरको माथेके एकदम आगे खींचकर, भागकर, कमरेके एक कोनेमें सिमट बैठ गई। हाय! लाज आती है!

"मैं कैसी लगती हूं,—कैसी लगूँगी? मास्टर देखेंगे तो क्या सोचेंगे?—ऊँह, देखेंगे ही नहीं। मैं जाऊँगी ही नहीं।....फिर याद जो करेंगे!—करें, मेरा क्या?....मैं तो नहीं जाऊँगी।....कैसे जाऊँगी?"

तभी एक बात उठी।

"मैं गई ही—और उन्होंने 'कट्टो' कह दिया तो? —वह ऐसे ही हैं,

समझते हैं नहीं, कुछ भी कह देंगे।····उन्होंने कट्टो कहा, तो,—तो मेरा तो मरन हो जायगी।"

इसी बहकमें सोचते सोचते तीव्रता आ गई। तभी वह कोनेमेंसे उठ आई। हाथके एक झटकेसे धोतीका छोर पीछे जा पड़ा, सिर उघड़ गया। उघड़ा रहे,—सो क्या हुआ। दावात क़लम काग़ज ले आई और खाटपर बैठकर लिखने लगी। बिंदी वहीं माथेपर बैठी बैठी ऊपर उघड़े सिरको देखकर और नीचे इस लिखी जाती हुई चिट्ठीको देखकर चुप चुप कैसी लाल लाल हँसी हँस रही है!

१७

सत्य सोकर उठा तो कुछ समझ नहीं पा रहा है। पास ही वह बिहारीकी चिट्ठी सिकुड़ी-सिकुड़ाई पड़ी है। उसने अनमनाये मनसे उसे उठाकर पढ़ा। जैसे पहली ही बार पढ़ा हो,—वह चौंक उठा।

क्या होगा? वह क्या करे? माँको मर जाने दूँ?····बिहारीसे क्या कहूँगा? उसे क्या सफाई दे सकूँगा? उसे क्या सफाई दे सकूँगा? और वह मनमें क्या समझेगा?

यह कट्टोने बीचमें आकर क्या गड़बड़ मचा दी है! वह कौन है?—मेरी क्या लगती है? मुझे उसका क्या देना है?—फिर वह मुझे क्यों इस तरह तंग करती है?

तभी किसीने चुपकेसे कानमें कहा—

"वह कहाँ तंग करती है?—इतने दिनसे तुम्हारे पास आई तक तो नहीं। वह तो तुमसे कुछ कहती नहीं। अपने चुपचाप दिन काट रही है, वैसे ही काट ले जायगी।"

सत्य बड़े झमेलेमें है। बड़े संकटमें है। रह रह कर सोचता है, मैं क्यों व्यर्थ अपने ऊपर ज्यादा जिम्मा लेकर विधाताके काममें अड़चन डालूँ? होने दो जो हो, मैं कुछ नहीं बोलता। लेकिन रह-रह-कर मानसक्षेत्रमें आँसुओंसे पद-प्रक्षालन करती हुई उठ आती है वह कट्टो!—जो कहती है, 'मैं कुछ नहीं कहती। मैं किस लायक़ हूँ? जो चाहे सो करो।'

यह गड़बड़ उससे खत्म होती मालूम नहीं होती। वह क्या करे? सोचा, अपने को निश्चेष्ट,—ढीला छोड़ दूँ। जो होगा, हो जायगा।

लेकिन इस तरह देखा, निश्चेष्टतासे कुछ नहीं होगा। यही होगा कि बाबूजी जीत जायेंगे, कट्टो हार जायगी। जो हारता रहा है हारेगा, जो जीतता रहा है जीतेगा। और कट्टो इस हारको ही प्राण-पणसे स्वीकार कर दूसरेकी जीतको खट्टा बना देगी। कट्टो तो जीवनके इस खेलमें हारका ही दाँव आगे बढ़ाकर चलती है, इसलिए जो मिलता है उसीमें उसकी जीत है।

सोचते सोचते उसका सिर मानों धुन डाला गया है। एक ओर अपनी बातकी रक्षा है और बिचारी कट्टोकी रक्षा है। दूसरी ओर अपनी हैसियतकी अपनी माँकी, अपने सब कुछ की रक्षाका ख्याल है। और कट्टो क्या सचमुच आवश्यक रूपमें उसके ही द्वारा रक्षणीय है?

कट्टो, मैं अपनी माँके पास जाता हूँ। पैरोंमें सिर रखकर कहूँगा, 'माँ, बहुत दुःख दिया। अब और दुःख न दूँगा। आज्ञा करो।' यह सोचकर अपनी माँके पास जानेके लिए वह संकल्प कमानेमें लगा।

तभी मुँहपर नाक और धूलकी लेही लपेटे अग्रवालोंके घरकी खीरा आ खड़ी हुई।

"क्यों, खीरा बेटी, क्या है?"

"ये कागद," कहकर उसने हाथकी मुट्ठी खोल दी।

"किन्ने दिया...."

"उन्ने ही...." कहकर वह अपना बताशेका इनाम लेने चली गई। बुरी तरह गुड़ीमुड़ी हुआ वह बंदामी काग़ज खुला—

"मेरे....मेरी एक बात है। उड़ाना नहीं, बुरा होगा। मुझे अबसे 'कट्टो' मत कहना। लाज आती है। ब्याह हो जाय तब चाहे जो कुछ कहना। उससे पहले नहीं,—तुम्हें मेरी क़सम। —कट्टो।"

"पीछे तुम अम्माँके पास गये, मुझे पता चल गया है। क्यों गये? मेरे कारन सोचमें मत पड़ना। —कट्टो"

खत पढ़कर उनका माँके पास जाना रुक गया।

१८

बिहारीको घरपर चैन नहीं पड़ा। भीतर जो कट्टोका कल्पनाके सहारे बनाया हुआ एक चित्र बैठ गया है, वह दिलको गुदगुदाता रहता है। इसीलिए पिताको वहाँ पत्र लिखानेके लिए उकसाया और इस तरह गाँव आनेका बहाना प्राप्त किया। बाबूजी भी अब सचमुच बहुत बाट देखते बैठना नहीं चाहते। वह सत्यको खो देनेको तैयार हैं, पर इस वर्षसे आगे गरिमाका व्याह टालनेको तैयार नहीं।

पिताकी इन सब इच्छाओंको समझकर और कैसे क्या करना होगा, इस सबका भी खाका मनमें बिठाकर बिहारी सत्यके गाँव के लिए रवाना हुआ।

कट्टो कैसे मिलेगी, कैसी होगी? इन सब संभावनाओंपर उसकी कल्पना दौड़ रही है और उसे चुटकियाँ ले रही है। वह अपनी कल्पनाओंको बहकाना चाहता है, पर वे न अखबारमें, न किताबमें और न रेलके बाहरके खेत और जंगलके दृश्योंमें ही अटक पाती हैं,—वे तो छूट छूट कर वहीं गाँवकी कट्टोके पास भाग निकलती हैं।

वह गाँवमें कभी नहीं आया है। तो भी उसे दिक्कत न होगी,—वह सब ठीक-ठाक कर चुका है।

कट्टो पानी भर रही हो तो—? तो मुझे क्या समझेगी?—क्या करेगी?

ओह! अगर कहीं मास्टर साहबके पास पढ़ती हुई मिली तो बड़ा मजा है।

.. भई, बड़ी अच्छी बात होगी। मैं गाँव में रहने लगूँगा। एक झोंपड़ी बनवा लूँगा। शहरमें रहना कुछ नहीं,—तमाम दुनियाकी आफत! उसे तो मैं शहरी कभी नहीं बनाऊँगा। देखी तो हैं शहरकी,—मानों आस्मानपर चढ़ जायेंगीं!.. नहीं जी, गाँवमें रहेंगे हम,—मैं और कट्टो।...बाबूजी कहेंगे तो कहो,—मुझे नहीं पसंद यह वकालत। मनहूसियत छा जाती है। ज़िन्दगीका मजा कुछ रहता ही नहीं। पैसा, अदालत, मुवक्किल और झूठ और फ़रेब, और ...। नहीं बढ़िया किसान बनकर रहूँगा। फिर अपनी अँग्रेजी डिग्रीको, चोग़ों और सनदोंको खूँटीपर लटकाकर कहूँगा,— लोगो, वह रही तुम्हारी वकालत और वह रही तुम्हारी अंग्रेजी! उन्हें हाथ जोड़ो, मझे छोड़ दो। मुझे चुप-चाप किसान बनकर रहने दो। कैसा मजा रहेगा! खुशीसे भरी और फ़िक्र से खाली मनुष्यतासे भरी और बनावटसे खाली,—बड़ी सुंदर जिंदगी होगी वह। लोगोंसे कहूँगा,—

सलामत रहें ये सनदें, इन्हें लटका रहने दो, (कभी कभी झाड़नसे उन्हें झाड़ भी दूंगा) पर मुझे तो मेरी किसानी भली, और मेरी गाय,—गाय एक जरूर रक्खूँगा और, और वह मेरी कट्टो !...

इसी तरहकी वहकमें वह बेरोक वह चला। रेलमें बैठे बैठे इस तरह जो बग़ीचे उसने बनाये और क़िले खड़े किये, उन सबके बीचमें आ प्रतिष्ठित होती थी वही कट्टो !

तब वह सोचता था, बनी रहे यह तन्दुरुस्ती और यह शरीर, अपने झोंपड़ेमें मैं कट्टोको महारानी बनाकर रक्खूँगा। रुपया मुझे नहीं चाहिए। सब सत्यको द दिया जाय तो ठीक। वह इसके क़ाबिल भी है। मैं तो ऐसाही ठीक रहूँगा।

गाँवमें आखिर वह आया। लड़कियाँ राहमें मिलीं,—पर कट्टो तो कोई नहीं है। क्या वह उसके तांगेको इस तरह देखती रह जाती ? न जाने क्यों, उसे विश्वास है, कट्टोको पहचाननेमें भूल वह कभी कर ही नहीं सकता।

सत्यके मकानपर पहुँचकर चिल्लाया—'मास्टर साहब !'

सत्य सो रहा है। अपनेसे निबट नहीं सकता तो सोना ही उसका काम रह जाता है।

सत्यकी मां आई। झिझकती हुई घूँघट आगे डालनेको तैयार। देखा, कोई सत्यका समवयस्क है,—बिहारी ही न हो !

"दिल्लीसे आ रहे हो भाई ?"

"हाँ जी।" समझ गया वह माँजीके सामने है। झट-से पैर छुए।

"मैं विहारी हूं।"

"सो ही तो मैं समझी।"

"सत्य दादा कहाँ हैं ?"

"ऊपर सो रहा है।"

सामान रख-रखाकर कहा—माँजी, मैं ऊपर जाऊँ ?

"हाँ हाँ। वह जीना है।"

विहारीको जल्दी है। कट्टोके कारण सत्यसे मिलनेकी जल्दी है। झट ऊपर पहुँच गया।

सत्य सो रहा है। जगाये या न जगाये ? पाँच-सात मिनट बैठनेके बाद बिना जगाये उससे रहा न गया।

"मास्टर साहब !"

मास्टर साहबको झझकोर उठाना पड़ा। उठे।

"विहारी !—विहारी तुम !"

मास्टर साहबको यह क्या ?—जैसे खून जम गया।

बिहारीने कहा—हाँ हाँ, अभी टपका पड़ रहा हूँ। घबड़ाओ नहीं, हौआ नहीं हूँ, सदेह विहारी ही हूँ। यह प्रमाण लो।" कहकर, एक बार कंधा पकड़कर फिर झझकोर दिया।

मास्टर साहब अपने-पनमें आये।

"आओ, बैठो।"

"आया भी हूँ, और बैठा भी हूँ। अब आदमी बन चलो, सुना ? यों रोते-से मत बने रहो।"

दोनों फिर दो कुर्सियोंपर बैठ गये। बात शुरू होनेकी देर थी, विहारी बोला—हाँ कट्टो....।

मास्टर साहबने चिहुँककर कहा—कट्टो !....

और उनकी दृष्टि उस दूर क्षितिजके ऊपर उड़ती हुई चीलपर जा गड़ी।

१९

जिस बातको कहना है उसको कबतक गलेमें अटकाये रक्खा जाय ? लेकिन कहनेमें बड़ी कठिनता होती है। जैसे आत्मग्लानिका घूँट जो उबककर मुँहमें आता है, उसे फिर गलेके नीचे उतार लेना पड़ता हो ! सत्य दोनोंके ही अपराधी हैं,—कट्टोके भी और विहारीके भी। दोनोंको बढ़ाया, और अब दोनोंको खोकर आप बच निकले जा रहे हैं। तो भी सारी कहानी सच सच कह दी।

पर बिहारी मर्द है,—सच्चा विहारी है। इतनी मेहनतसे अभी अभी जिस भविष्यके स्वर्गको खड़ा किया था, और जिसे अभी सजा ही रहा था, उसको सत्यने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। और सत्य ही वह व्यक्ति है जिसने उसे उस भविष्यकी दागबेल डालनेको निमंत्रित किया था। लेकिन अभी तो उस भविष्यके चकनाचूर ढेरके पास खड़ा होकर वह सिर सीधा रखकर मुस्करा ही देगा, पीछे फिर चाहे कितना ही रोये। वह अभी तक अपनेसे अलग खड़ी हुई निराशाके

अँधेरेका छेदन कर यह भी देखता है कि सच पूछो तो इस जगतमें कहीं किसी पर भी दोष रखनेमें अर्थ नहीं है। लेकिन सत्य एक बात कहकर उससे डिग रहा है, यह उसकी समझमें नहीं आता। उसने कहा—

"चलो मेरा झगड़ा छोड़ो। लेकिन अब तुम क्या करोगे ?"

"माँको मार नहीं सकूँगा।"

बिहारी जानता है कि उसकी बहिनका मामला है। पर बिहारी असमंजसको बहुत जल्दी काट फेंकता है। उसने अपने जीवनका आदर्श कुछ बहुत ही स्पष्ट और निर्णीत धारणाओंपर गढ़ रक्खा है। उसमें ज्यादे हेर-फेर और घुमाव-फिराव नहीं है। इसीलिए ऐसे मौक़ोंपर वह संकटमें नहीं पड़ता। इसीलिए वह सदा हलका हलका बना रह सकता है,—क्योंकि वास्तवमें वह खूब भारी है। उसके व्यक्तित्वका लंगर खूब गहराईमें, बड़ी मजबूतीके साथ, एक निष्ठामें गड़ा हुआ है। इसलिए वह चाहे दुनियाके पानीपर कितना भी लहराता क्यों न रहे, Buoy की तरह, डिग नहीं सकता। एक ओर गरिमा और दूसरी ओर कट्टो,—इन दोनोंके बीच अपनी राह बूझते हुए सत्यको इसीलिए बिहारी ठीक निर्णय दे सकता है। बिहारीने कहा—

"कुछ भी कहो। मैं होता तो मैं अपनेको छला न सकता।"

"यह बात नहीं है, बिहारी। लेकिन...कुछ और ही बात।"

"मुझसे पूछते हो तुम ? मैं तो यह कहूँगा कि तुम आत्म-प्रवंचन करते हो, और उसके साथ चलनेवाली जो आत्म-ग्लानि है, उसे, अपनी माँ और बाबूजी और गरिमाकी ओट बैठकर बचा जाना चाहते हो। सो नहीं होगा, सत्य।"

"तुम अन्याय करते हो बिहारी।"

"ऐसा समझो, ऐसा ही सही। लेकिन, सत्य, तुम थोड़ा अन्याय नहीं कर रहे हो।"

"मैं बँधा हुआ हूँ।"

"वचनसे नहीं ?"

"उससे भी ज्यादेसे,—कर्तव्यसे।"

"कर्तव्यसे ?—ओहो ! फिर तो आगे जुबान बंद। इस शब्दके आगे तो मैं घुटने टेककर बैठ जाता हूँ। जी तो कुछ और होता है, पर इस शब्दकी अद्‌भुत पवित्रताको याद कर हाथ ही जोड़ देने पड़ते हैं। अभी काली माईके

पंडोंसे कुछ कहूँ तो इसी थैलीका एक शब्द सुन पड़े—धर्म ! जहाँ धर्म और कर्तव्य बहुत सुन पड़ते हैं, वहाँ मुझे कानपर हाथ रखनेके अतिरिक्त कुछ काम नहीं रहता। सुना सत्य ? "

बिहारीकी यह वक्तृता सत्य पचा नहीं सका। अब तक वह अपनेको बड़ा मानता था। लेकिन जब देखा कि बिहारी बिना प्रयास यह अंतर लाँघ सकता है तो यह अनुभव सत्यको रुचिकर न हुआ। कहा—

" बिहारी, यह लेक्चर देना कबसे सीख गय ? "

" नहीं नहीं, माफ करो।..तो फिर क्या तुम निश्चय पर आ गये हो ?" अभी निश्चयसे जरा दूर थे, पर बिहारीके शब्दोंने मानों धक्का देकर उन्हें वहाँ पहुँचा दिया।

" हाँ, अपनी माँसे आज ही कह देना होगा। तुमको तो इससे प्रसन्न होना चाहिए। "

" हाँ हाँ, क्यों नहीं। मैं आया ही इसलिए हूँ। लेकिन एक बात बताओ,—कट्टोसे तुमने कह दिया है न ? " "न.."

" न ?—कहा नहीं ? तुम बड़े सुस्त हो। जरा शंका थी, तभी यह बात उसे कह देनी थी। लेकिन अब न कहना, यह काम अब मुझे करना होगा। पर एक काम करोगे ? " " बोलो.. "

" एक बार कट्टोको बुलाना होगा, मेरा परिचय कराना होगा।"

२०

दोनों मित्र बैठे हैं, अपने अपने ध्यानमें हैं,—और प्रतीक्षामें हैं। कट्टो अब आना चाहती है। कट्टो आना चाहती है,—कहीं खटका न हो। समय मानों रुक गया है, हवा ठहर गई है। मित्रोंकी निकलती हुई साँस ही मानों वहाँ कमरेमें सचल वस्तु है।

कट्टो आई। छायाकी तरह, चलती हुई मूर्तिकी तरह।

हें, य, कौन ! एकदम बहुत लम्बा घूँघट निकल आया और वह दर्वाजेके पास ही, इधर पीठ करके, दोहरी होती हुई खड़ी हो गई।

बिहारीके मनमें हुआ सत्यको शाप दे डाले ।

सत्यके जी को जैसे कोई ऐंठकर निचोड़ने लगा ।

सुन्न सन्नाटा रहा । किसीको वोल नहीं आया । तीनोंके मनसे न जाने क्या क्या निकलकर अलक्षित और अव्याहत रूपमें उस कमरेकी शून्यतामें व्याप्त हो गया । एक भारी त्रास सारे कमरेम इन तीनोंहीके जीको घोटने लगा ।

अब बिहारी जागा । सत्यकी जीभ मानों जकड़ गई है,—वह मानो रो देगा, बोल नहीं सकेगा । ऐसे संकटमें बिहारी ही त्राण देगा । उसने कहा—

"भाभी ! ..."

सत्य काँप उठा । कहीं वह अभी दयाकी भीख न माँग उठे !

कट्टो, अगर हिल सके, तो किवाड़के पीछेवाली परछाहींमें समा जाय ! 'भाभी !' इस शब्दके अर्थने मानों विजलीकी तरह उसके शरीरमें कौंध कर उसे सुन्न कर डाला ।

"भाभी !—यह नहीं होगा । मैं पर्दा नहीं करने दूँगा ।" यह कहा और पास पहुँचकर दोनों हाथोंसे दो छोरोंको पकड़कर विहारीने घूँघट उलट दिया !

ओः विहारी, यह न करो, लाज करो, तरस खाओ । देखो वह काँप रही है, मुरझती जा रही है, सिंदूर-सी पड़ी जा रही है !—कहीं और कुछ न हो जाय !

विहारीने देखा,—माथेपर नन्हीं-सी टिकुली लगी है, वाल चिपटाकर सँवारे हुए हैं, हाथोंकी दो लाल चूड़ियाँ उझक उझक कर अपनेको दिखला देना चाहती हैं ।

उसके जीमें उठा कि हाय, सत्य तू पशु है !

अव क्या सिंदूरिया यह रंग ठहरेगा, यह टिकुली क्या फिर लगेगी ?—क्या यह गाँवकी लड़की दूसरी वार अपनेको ऐसा सँवारनेका अवसर पायेगी ?

हाय, अगर विहारी....? लेकिन....

"भाभी ! ऐसे नहीं खड़ी रह सकोगी ।......तुम्हारा नटखट बिहारी आया है । वह तुमको अपना परिचय देना चाहता है । चलो उसकी सुनो ।"

कलाई पकड़कर उस मुर्झाती हुई वालाको निर्दयी बिहारी खचेड़ ले चला । ले जाकर कुर्सीपर प्रस्थापित कर दिया ।

अब खून उसमें दौड़ रहा है । गड़ तो कहीं पाई नहीं,—और अब अवसर निकल गया । अब हठात् वही दरख्तवाली कट्टो वने बिना उससे नहीं रहा

जायगा। वैसे यह अपनेको बिहारी कहनेवाला निर्दयी भी उसे क्या यों ही छोड़ देगा ?

अब कट्टोकी गर्दन उठी। आँखें उठीं, फलीं, कोयोंमें जरा स्निग्धता आई। वही आँखें जिनमें छना हुआ स्त्रीत्व भरा है।

"देखो अब मैं पराया नहीं हूँ। बताऊँ, मैं कौन हूँ, क्यों आया हूँ ?" बिहारी उन आँखोंमें प्रोत्साहन पाकर बोलता ही रहा "बताऊँ ?—इन तुम्हारे मास्टरजी पर कुछ रोज़से एक भूत आने लगा है।...."

ओंठ फैले, जहाँ अभी गुलाबी-सी चमक थी गालोंमें, वहाँ अब एक छोटा-सा गड्ढा पड़ गया, वह मुस्कराई।

"उस भूतका नाम है गुम-सुम। जिसपर चढ़ता है उसे गुम-सुम कर देता है। मैं भूत उतारनेमें खूब होशियार हूँ। बरसों मैं इनके साथ पढ़ा हूँ,—यह मेरी तारीफ़ जानते हैं। इस भूतकी बात जानकर फ़ौरन दौड़ आया हूँ। देखो भी भाभी, अब करता हूँ चेष्टा इनके भूत-उतारनेकी।"

कट्टो हँसी—

"चुप क्यों बैठे हो जी !—नहीं तो यह शुरू करें उतारना तुम्हारा भूत !"

उनकी तो जीभ जैसे और भी ऐंठी जा रही है। बोलना चाहते हैं, पर जैसे वह जवाब दे रही है।

"ऐसे नहीं, देखो, एक काम करो। तुम उधर जाओ, मैं इधर खड़ा होता हूँ। एक–दो–तीन कहूँगा, तीनपर एक साथ मैं भी और तुम भी, इनकी बग़लके ठीक बीचोबीच बिन्दुपर गुदगुदी मचा दें। ठीक बीचों-बीच बिन्दुपर, इधर उधर नहीं; और ठीक तीनपर, आगे-पीछे नहीं !—नहीं तो गुम्मा-सुम्मा और चढ़ जायगा। समझती तो हो न ?....ठीक...."

"हाँ हाँ, बिल्कुल ठीक लो, बिल्कुल...."

"लो बोलता हूँ। ए....क, दो....ओ..ओ,..देखो,..ठीक..हाँ.. बोलता हूँ आगे !...."

"यह क्या तुम लोग तमाशा बना रहे हो ?" सत्य झल्लाया।

बिहारी बोला—देखा, भागा वह भूत, भागा !

"चुप रहो जी, शरारत बन्द करो।"

कट्टोकी हँसीकी फुहार उछली पड़ रही है।

बिहारीने कहा, "देखो, मैंने कहा था न ? पर यहाँ तो दवाके नामसे ही काम चल गया।"—

बिहारीपर डाँट पड़ी—बिहारी !....

कट्टोने कहा—अब तो भाग गया भूत। अब तो बोलो।

सत्य इधर झुका, बोला—कट्टो !....

कट्टो ! दूसरेके सामने यह !

बोली, "किसे कहते हो कट्टो ? कौन है कट्टो ? तुम्हें शऊर नहीं है,—कि कौन है, क्या है....! कट्टो कट्टो !"

कट्टोकी इस भड़कनपर बिहारीको हुआ कि यहाँसे छिपकर वह कहीं दूर जा सकता और रो लेता !

अपने साथ बहुत ज़ोर लगाकर, "अच्छा, बिगड़ो मत। और कोई नाम भी तो नहीं मिलता—क्या कहूँ ?" सत्य आखिर बोला—

"कुछ भी कहो—हम नहीं जानते।"

"अच्छा....यह मेरे साथी हैं। मैंने एक रोज तुमसे ज़िक्र किया था,—यह वही हैं।"

बात खतम नहीं हो पाई थी कि कट्टोने बिगड़कर बिहारीसे कहा—

"तुम...."

तभी कुछ हो गया कि उसने फिर घूँघट आगे बढ़ा लिया,—पहले जितना नहीं, ज़रा थोड़ा।

"भाभी, मैं तुम्हें अब शर्माने न दूँगा।" कहकर उसने घूँघटको वैसे ही उठा दिया।

लेकिन अब कट्टो अदब नहीं भूल सकती।

बिहारीने कहा, "एक मिनटमें बड़ी-बूढ़ी हो जाना चाहती हो तो तुम्हारी मर्ज़ी। लेकिन एक बात कहो। मैं तुम्हारे घरपर आऊँ तो भोजन दोगी न ?"

कट्टोने अपने मास्टर-साहबकी ओर देखा, इस भावसे कि—आज्ञा है ? फिर कहा—

"हाँ, कल सवेरेका निमन्त्रण है। याद रखना, भूलना नहीं। इन्हें भी साथ ले आना।"

२१

इसी डाकसे बाबूजीको दो पत्र गये हैं। बिहारीने लिख दिया है,—सब ठीक है, मुहूर्त्त निकलवा लें, सत्यको राज़ी समझिए, सत्यकी माँ जल्दी ही चाहती है।

इधर बिहारीकी शोखी देखकर सत्य फिर पलटा खा गया है। साथ ही समझता है,—आनाकानी करते रहनेमें भी कुछ बात है। उसने बाबजीको यह पत्र लिखा है—

"बाबूजी, बिहारी आ गया है, प्रसन्न है। उसे लौटनेमें कुछ विलम्ब हो तो आप चिन्ता न करें। मैं उसे जल्दी नहीं लौटने दूँगा। कब तो आया है। ··· मैंने आपको एक लड़कीकी बात कही थी। आप भूले न होंगे। पिछले दिनोंमें कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उठ आईं कि मुझे उसकी विशेष चिन्ता करनी पड़ी। वह बातें मैं आपको लिख नहीं सका, अब भी खुलकर लिख नहीं सकता। शायद बिहारीने आपको कुछ लिखा होगा। बिहारीको मैं अपना पूरा दिल कैसे दे सकता हूँ? मालूम नहीं, बिहारीने क्या लिखा है। लेकिन मैं तो अभी पूरी तौरसे हाँ कर नहीं सकता। उस लड़कीसे कुछ बातोंमें मैं बँध बैठा हूँ। वह मुझे न जाने किस ढंगसे देखने लगी है। वह समझती है, मैं उसको अपनाऊँगा। या तो इस समझको मुझे अपनी ओरसे तोड़ना होगा, या नहीं तो किसी तरहसे उसीके दिलमेंसे यह भाव निकाल देना होगा। पहली बात मुझसे न होगी, दूसरी बात मालूम नहीं कैसे होगी। लेकिन जबतक यह न होगी तबतक मैं अपने हाथोंमें नहीं हूँ, और आप कुछ भी निश्चित न समझें।

गरिमाको नमस्ते दे दें और विपिनको प्यार। —आपका सत्य"

जसे मन उसका अस्थिर है वैसे ही उसकी बात भी डिगमिगाती होती है। दो-टूक कहना नहीं जानता। इस चिट्ठीके बाद भी उसका मन डाँवाडोल है। सोचता है, देखें, बाबूजी क्या जवाब देते हैं। जैसे अपना निर्णय वह आप नहीं करना चाहता,—चाहता है दूसरे उसके लिए निर्णय करके दे दें। मन-भाया निर्णय दूसरेसे पाकर वह झट उसे मान लेगा। हमें बिहारीकी बात ही ठीक जँचती है। वह दूसरोंकी ओट चाहता है, जिससे कामका सारा उत्तरदायित्व वह उनपर फेंक दे सके, और खुद अपने सामने अपराधी बनकर खड़े होनेसे बच जाय।

बिहारी नहरसे नहाकर आया है। अब वह कट्टोके निमंत्रणपर जायगा। सत्य मन ही मन सोच रहा है—अगर बाबूजीने लिख दिया कि 'जो चाहे करो, मेरी

और गरिमाकी चिंता न करो, गरिमाका इसी सालमें कहीं और ब्याह कर दूँगा'—तो ? तब तो मैं कहींका नहीं रह जाऊँगा। यह ठीक नहीं होगा। लेकिन देखें तो बाबूजी क्या लिखते हैं।

सत्यको अब ज़मीनपर और हिसाब-किताबके साथ चलनेकी अक़ल सूझी है। अब वह चारों ओर ठोक-बजाकर, जाँच-पड़तालके बाद, नफ़े-नुकसानकी सारी बातोंका लेखा लगा चुकनेपर, आगे बढ़ना चाहता है। अब उसे हठात् यह सूझ रहा है, कि इधर क्या लाभ-हानि है और उधर कितनी है, यह सब देख-भाल लेनेकी ज़रूरत है। इस आमद-खर्चकी हिसाबी सूक्ष्म-बुद्धिपर चढ़कर जब वह तोलने बैठता है तो देखता है, कट्टोकी ओर आमद नहीं, खर्च ही खर्च है। दूसरी तरफ़ आमदनीकी कई मद्दें हैं, खर्च लगभग है ही नहीं। प्रतिष्ठा बढ़ेगी, पैसा आयगा, सुख भी मिलेगा, और भी बहुत कुछ। दूसरी तरफ सब कुछ खर्च होगा,—मिलेगा क्या ? यह नहीं कि सत्य खर्चसे चूकता है, पर अब वह खर्च लेखा देखकर करना चाहता है। आमदनी देख ले, तब दान देगा। बिना पड़ता बैठाये उत्सर्ग करनेसे, वह देखता है, कुछ हाथ नहीं आता।

ऊहापोहमें बहुत काल पड़े रहनेपर एक दिन जब यह काम-की बुद्धि सत्यमें पैठी, तब देखा, वह अब तक कैसे बे-लाभ आदर्श कल्पनाके वीरान मैदानमें फिरता रहता है। यह भी देखा बाबूजीको वह चिट्ठी लिख चुका है, और सम्भव है, तीर वापिस न आये। तो भी अभी आशा है, काम बिल्कुल नहीं बिगड़ा, देखें तो बाबूजी क्या लिखते हैं।

इस कुर्सीपर बैठा बैठा सत्य कहाँका बहका कहाँ पहुँच गया है, नहरसे नहाया आता हुआ बिहारी इसकी बिल्कुल कल्पना न कर सकता था। वह अब कट्टोके यहाँ जा रहा है। उसने पूछा, "सत्य, चलोगे ? वह खास तौरसे तुम्हें लानेको कह गई है।"

"मैं नहीं जाता, तुम्हीं जाओ।"

"वह बिगड़ेगी मुझपर।"

"कह देना, सिरमें दर्द है।"

"तब तो वह मुझे थालीपर बैठा छोड़कर तुम्हारा सिर संभालने दौड़ी आयगी।

"कुछ कह देना, लेकिन मैं जा नहीं सकता।" "क्या बात... ?"

"बात नहीं। लेकिन...यूँ ही।"

"अच्छी बात है ।...सत्य, मैं सोच ही रहा था, तुमसे कहूँ कि तुम न जाओ, मुझे अकेला ही जानें दो ।"

"सो ही सही ।..."

सत्य खुद पलट चुका है, फिर भी कोई कट्टोकी ओर खिंचे यह उसे नहीं चाहिए । इसीलिए वह इस बेढ़ंगे संक्षिप्त सो ही तो, के अलावा और कुछ न कह सका ।

विहारीने धोती फैलाई, बाल काढ़े, नई कमीज़ पहनी, धोती भी दूसरी बारीक निकाल ली-यह सब सत्य देखता रहा । आज पहली बार सत्यको पता चला कि विहारीके सभी कपड़े मुझसे अच्छे हैं, और विहारी शकल सुरत में अच्छा लगता है । विहारीने पैरोंमें स्लीपर डालकर कहा—

"चलता हूँ । तुम्हारे लिए माफ़ी माँग लूँगा । लेकिन मैं भाभीके विनाशके लिए जा रहा हूँ । आज भाभी अंतर्द्धान कर जायेंगी, कट्टोका पुनरुद्भव होगा ।—भाभी, यह बिहारी आता है, आज तुम्हारा संहार करने, यह तुम्हें जगत्से लोप-विलोप-संलोप कर जायगा, और तुम्हारी जगह छोड़ जायगा एक आलुलायित लोल-लोचन, कटाक्ष-संयुता, शुभ्रांवर-परिवेष्टिता, विधवा-विशेषण-युक्ता, जगदम्बस्वरूपा, मुक्तकेशी, सुहासिनी गँवारिणी ।" यह कहकर दोनों पैर जोड़े 'एटेन्शन, खड़ा हो गया और बोला—

"देखा, सत्य, मैं भी कैसी साहित्यिक भाषा बोलकर अभिनय कर सकता हूँ?" कौन बताये, इस अभिनयके खिलवाड़में और साहित्यिक-व्यर्थताके आडंबरमें बिहारी किस गहरी उमड़नको छिपा डालना चाहता था ।

जब चलनेको मुड़ा तो आँखोंके कोनोंमें आई हुई दो नन्ही-सी खारी बूँदोंको उसने झटपट पोंछ डाला । बिहारी, तुम धन्य हो, जो जब रोना आता है तो हँसकर दुनियाको धोखे में डालकर वेजाने-बेदेखे आंसू पोंछनेका अवसर निकाल लेते हो ! पर विहारी, यह तुम्हारा बिहार दुनियाको भुलाव में डाल दे, तुम्हें खुदको और इस लेखकको भुलावेमें नहीं डाल सकता । यह देखो, जीनेसे उतरकर कोनेमें तुम बहुत-से मोती आँखोंसे डाल रहे हो । यह तुम्हारा लेखक तुम्हें देख रहा है और तुम्हें पढ़ रहा है ।

जाओ, कट्टोके पास जाओ । वह तुम्हारे बहाने मास्टरका इन्तजार कर रही है ।

२२

हँसते हुए बिहारी कट्टोके घरमें घुस गया। सामने ही कट्टोकी अम्माँ खाटपर बैठी हैं। वह कभी इस घरमें नहीं आया है, और अम्माँ उसे नहीं जानती।

सीध आकर बिहारीने कहा—अम्माँ, मुझे जानती हो ?

अम्माँने देखा, एक अच्छे कपड़े पहने खूब अच्छा दिखनेवाला युवा सामने हँसता हुआ खड़ा है।

"नहीं तो बटा !"

"अच्छा बताता हूँ,—पहले पैर छू लेने दो।" कहकर पैर छुए और उसी खाटपर अम्माँके पास बैठ गया।

"अम्माँ, मैं सत्यके यहाँ आया हूँ। कल आया था,—दिल्लीसे।

"दिल्लीसे ?—"

"हाँ, अम्माँ।"

"दिल्लीमें तो सत्य····"

"हाँ हाँ वहींसे।"

"बड़ा अच्छा आया तू। सत्य तो····"

"अम्माँ, मैं रोटी खाने आया हूँ। कट्टो कल मुझे न्यौता दे आई है।"

"तू कट्टोको कैसे जान गया ?"

"उसके मास्टर-साहबसे जान गया हूँ।"

"सो वह तुझे न्यौता देकर आई थी ? तभी तो सवेरेसे लगी है।"

"सो बात नहीं, अम्माँ। लग तो मास्टरजीकी वजहसे रही है। उन्हें भी न्यौता था। पर वह तो आये नहीं,—आ नहीं सके। अब मैं ही दोनोंके बदलेका खाऊँगा।"

"है कट्टो बड़ी अच्छी। उसने मेरे मनकी बात की। पहले तो तेरा हमारे ही यहाँ हक़ है।"

कट्टोकी अम्माँ, कट्टोकी तारीफ़ इस बिहारीके सामने न करो। नहीं तो वह शुरू करेगा तो रात-दिन एक कर देगा। तुम नहीं सुन सकोगीं,-इसीलिए वह चुप है।

"जा भाई, जा। उधर है चौका।....कट्टो, देख तेरे मेहमान आये हैं।"

"कौन हैं ?" जानती है, फिर भी पूछनेके लिए कट्टोने पूछा।

चौकेमें कदम रखते हुए विहारीनें कहा—

"दासानुदास बिहारीदास !"

"वह नहीं आये ?"

बिहारी हैरान है, उसने पूछा, "कौन ?"

कट्टो झपी,—चुप।

बिहारीने यहाँ सत्यको गाली दे डालनेकी इच्छा की।

"नहीं...."

स्वरमें भारी निराशा थी बोली, "क्यों....?"

"यों ही कुछ काम जरूरी लग गया, आ नहीं सके।" कहा है, "मेरे लिए माफी माँग लेना।"

"तबीयत तो कुछ खराब नहीं है ?"

"विल्कुल नहीं...."

आज वहुत-बहुत-सी चीजें बनाई गई हैं। उस दिन-कैसा खाना नहीं है,—गिनतीमें सात-आठ चीजें होंगीं। आज पहले-ही-से दो पटड़े रक्खे हैं, पानी भरा रक्खा है, सब काम ठीक है। लेकिन आज खानेवाला बिहारी ही है,—और कोई नहीं है। मास्टरको सिर्फ़ एक ही दफ़े खिला सकी है जब कि उन्हें अपना पटड़ा खुद बिछाना पड़ा था और अपना पानी आप ओझ लेना पड़ा था। यह कैसा दुर्दैव है !

पर यह विहारी उसे दुर्दैवकी चिन्तामें पड़ रहनेके लिए खाली नहीं छोड़ेगा। आते ही वात-चीतका सिलसिला छेड़ दिया है, और कट्टोकी दुर्दैव की याद भागती जा रही है।

खाते खाते बिहारीने कहा—

"भाभी,—ऊँह भाभी मैं तुम्हें नहीं कहना चाहता। तुम बार-बार लजाती जो हो। हमारा तुम्हारा एक और रिश्ता भी है,—बताऊँ ?"

कट्टोने देखा यह 'भाभी' कहकर शुरू करनेवाला बिहारी बड़ा दुर्घट जीव है। न जाने अब कैसा मज़ाक करनेवाला है ? वह व्यस्ततासे अपने रोटीके काममें लग गई जैसे बिहारीकी बकवादपर उसे ध्यान देनेकी फ़ुर्सत नहीं है।

"वह फिर बताऊँगा। उसे सुननेके लिए तुम्हें तैयारी करनी पड़ेगी। अब तो 'कट्टो' कहना चाहता हूँ।···एँ, यों चौंको नहीं। 'कट्टो' कोई बुरी बात नहीं है।"

"तुम नहीं कह सकते कुछ मुझको !"

"मेरा रिश्ता सुनोगी, तो समझोगी, कट्टो, मैं कह सकता हूँ ।"

कट्टो अब झगड़ पड़नेको तैयार है। यह निर्दय उद्धत व्यक्ति आतिथ्यका दुर्लभ उठाता है । जैसे कट्टो बिल्कुल ही बच्ची है !

"तुम कुछ नहीं कह सकते—समझे ?"

बात कहींकी कहीं जा पड़ी है । अपनेको बिल्कुल खोलकर रख देनेसे ही अब वह मोड़ी जा सकती है । नहीं तो समझो, बिहारीका आजन्म-निर्वासन हो जायगा। कट्टोकी उपस्थितिमें फिर वह कभी प्रवेश न पा सकेगा । यह सब बिहारी तुरंत समझ गया । उसने कहा—

"तुम बिहारीको नहीं समझतीं । अगर उसने तुम्हें जरा भी दुःख पहुँचाया है तो उस जैसा अभागा व्यक्ति दुनियाँमें कोई नहीं । वह तुमसे क्षमा चाहता है। उसकी बात सुनोगी तो उसपर बिगड़ न सकोगी । और जितनी जल्दी सुन लोगी उतना ही अच्छा होगा । विश्वास रक्खो, तुम्हें तनिक दुःख पहुँचानेसे पहले वह —खैर, तुम क्या समझती हो, वह भूत उतारनेके लिए यहाँ आया है ?"

"बिहारी बाबू, मैं कुछ नहीं जानती । पर मुझसे मज़ाक मत करो ।"

"नहीं करूँगा । पर रोकर रोनेसे हँसकर रोना अच्छा है । इसीलिए मज़ाक करता हूँ,—क्योंकि भीतरसे तुम्हें रुलानेकी तैयारी कर रहा हूँ ।"

"मुझे तुम्हारी बात समझ नहीं आती । साफ़ क्यों नहीं कहते हो ?"

"खानेसे निबटकर सब कहूँगा । अभी तो एक रोटी दे दो, और वह साग, ····वह नहीं,····आलूका ।"

फिर कोई कुछ नहीं बोला । खाना खाकर उठा तो पूछा, "अपनी बात अब कह सकूँगा ?"

"चौकेसे निबट लूँ, तब । जाओ नहीं, अम्माँके पास बैठो ।" फिर थोड़ी देर रुककर कहा "बिहारी बाबू, तुम कोई हो, बड़े भले आदमी हो । इस बारेमें मैं अब कभी भूल नहीं करूँगी । कोई अपराध बन गया हो तो भूल जाना । मैं, देखो, गँवारिन हूँ ।"

बिहारी ऐसी आत्म-पीड़नसे भरी क्षमा-आशाके सामने बिल्कुल न ठहर सका।

"अम्माँके पास बैठता हूँ , तभी जाऊँगा ।"

चौकेसे बाहर होते ही 'अम्माँ-अम्माँ !' धूम मचाता-हुआ बिहारी चला

अम्माँके पास ।

"खा लिया रे ?"

"इतनी चीजें खिलाई, अम्माँ, कि खाते खाते सब नहीं खा सका । सबको चखते चखते ही पेट दूना भर गया । अब तो, अम्माँ, लेटे बग़ैर गुजारा न होगा,—पेट जवाब दे देगा ।"

अम्माँने अपनी खाट छोड़ पीढ़ा सँभाला, कहा—

"धूप आ गई है, खाट वहाँ जामनकी छाँहमें कर ले, और नेक सो जा ।"

वह लेट गया । पेढ़पर अधपकी जामन लग रही हैं । देखते देखते बिहारीके सिरपर कट्टसे एक जामन पड़ी ।

"अम्माँ, तुम्हारे घरमें यों आकाशसे बम्बके गोले गिरते रहेंगे, तब तो मैं यहींका हो रहूँगा । घर भी नहीं पहुँच पाऊँगा ।"

"अरे, रो मत, सो जा । मर नहीं जानेका, जा, मैं कहती हूँ । दिल्लीमें भी मिला है कभी तुझे ऐसे सोनेको ? वहाँ तो चाहे इसके लिए तरसता ही हो !"

"जाने दो, मेरा क्या, मैं तो सोये जाता हूँ । मेरा सिर फूट गया तो दूसरा अम्माँको ही देना होगा ।"

"हाँ हाँ, दे देंगे । सो—तू—अब ।"

बिहारी जामनके तले माँके प्यारकी छाँहमें, कट्टोके इस गँवई स्वर्गगृहके आँगनमें आँख मीचकर सो गया ।

———

२३

कट्टोके तेलसे गीले हो रहे आले-वाले कमरेमें ।

"मै दिल्लीसे सत्यके लिए विवाह-प्रस्ताव लेकर आया हूँ ।'

"तो—?"

"तो तुम्हें इससे कुछ मतलब नहीं ?"

"कुछ नहीं ।"

"तुमने गरिमाका नाम सुना है ?"

"नहीं ।"

"मैं उसका भाई हूँ ।"

"अच्छा।···"

"अभी जो थोड़े ही दिन हुए सत्य गया था तो हमारे ही साथ गया था।"

"हुँ···"

"मैं वहाँसे विवाहकी बात पक्की करने आया हूँ।"

"पक्की हो गई ?"

"बिल्कुल तो नहीं। लेकिन—"

"झूठ बोलते हो।"

"झूठ क्या ?"

"यही कि विवाहकी बात पक्की हो गई। तुम वृथा आये हो। विवाहकी बात पक्की नहीं कर सकोगे।"

"यह तुम कैसे कहती हो ?"

"मैं कहती हूँ।"

"लेकिन तुम भूलमें हो।"

"नहीं हो सकती ?"

"हो तो—?"

"हो नहीं सकती।"

इतना विश्वास ! हाय, क्या सत्य इसके योग्य है ? क्या सत्य ऐसे निश्चल विश्वासके साथ खेल करने चला है ? ऐसे स्वर्गीय विश्वासको फुसलाकर फिर उसके साथ छल करेगा ?

आह !—इस कट्टोपर वह छल फूटेगा तो क्या हाल होगा ?

बिहारी बोला, "परमात्मा करे, मैं झूठ बोल रहा हूँ। मालूम होता है, सत्य असमंजसमें है। वह शायद मेरी बहनके साथ ही शादी करनेको लाचार हो। मुझे यही दीखता है।"

"————?"

"लेकिन मालूम होता है, वह बंधनमें है। तुम उसे खोल सकती हो।"

"ओह, क्या कहते हो ? मेरा बंधन !—मेरा कैसा बंधन !! मैंने कब क्या बाँधा है जो खोल सकूँ ? मैं क्या बाँध रखनें लायक हूँ ? लेकिन यह सब तुम क्या कह रहे हो ? जानते हो, यह उससे कह रहे हो जिसके लिए यह बातें कही न कही सब बरावर हैं।"

"मैंने सत्यसे पूछा है। बातें की हैं। उसने सारी बातें मुझसे खोलकर कह दी हैं। अगर उसे अपनी बातका ख्याल न हो, तो उसकी खुशी, मैं जानता हूँ, किधर है।"

उनकी खुशीके लिए मेरा तन ले लो। पर मुझसे ऐसी बात न करो।"

बिहारी यह किसे मनाने चला है, जो बिना शर्त, बिना कारण सुने, बिना मांगे सब कुछ दे डालनेको,—सब कुछ मान लेनेको पहलेही से तैयार है ? फिर भी तफसील देना, सफ़ाई देना, मानों काटकर फिर उसे नमकसे भरनेका प्रयत्न करना है। लेकिन बिहारी कह ही रहा है—

"सत्यका उतना दोष नहीं है। वह अपनी बात पूरी करे तो उसकी माँ मर जायगी। उस..."

कट्टो निरपेक्ष—चुप।

"उसकी क्या प्रतिष्ठा रह जायगी ? लोग क्या कहेंगे ?..."

कट्टो चुप—सुन्न।

"मेरे बाबूजीसे उसे ऊँचे लोगोंसे सम्बन्ध और पैसेकी सुविधा प्राप्त होगी। तुमसे...?"

कट्टो सुन्न—मूर्तिवत्।

"मेरी बहिन खूब पढ़ी है। अंग्रेजी जानती है, और बड़ी बड़ी बातें जानती है। तुम···?"

कट्टो मूर्ति-सरीखी—जड़वत्।

"मेरी बहिन उसे खूब सुख पहुँचा सकेगी। तुमसे उसे संतोष नहीं प्राप्त होगा।···उसे छोड़ क्यों नहीं देतीं ?"

कट्टो जड़वत्—अचेत।

बिहारी कहे जा रहा है—

"सत्यकी माँ, सत्यकी बड़ाई, सुख, प्रतिष्ठा, संतोष और सत्यकी भलाई···"

पर देखो देखो, कट्टो अचेत मूर्छित होकर गिरी जा रही है !

बिहारीने झट-से सँभाल लिया। सत्यपर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा है। सत्य यहाँ होता तो उसका सिर पकड़कर इस कट्टोके पैरोंके पास धूलमें,—धूलमें इतना घिसता कि बाल सारे उड़ जाते ! हाय, कम्बख्त स्वर्गके इस अछूते पारिजातकी गंधको जूठा करके छोड़े जा रहा है !

कट्टोको खाटपर लिटा दिया। कुछ उपचारसे होश आया। कट्टोने जगकर देखा, कि बिहारी शुश्रूषामें लगा है।

"बिहारी बाबू, आप जाओ। उनसे कह देना कि अपने कामोंमें कट्टोकी गिनती न करें। मेरे पीछे उन्हें थोड़ी भी चिन्ता भुगतनी पड़ी तो मैं अपनेको क्षमा न कर सकूँगी। मैं क्या रही, जो मेरे पीछे उन्होंने दुख भुगता : न हो, तो मैं ही उनसे कहूँगी। कहूँगी, अपनी कट्टोपर इतना एहसानका बोझ न डालो, मुझसे उठाया न जायगा, मैं उसके नीचे सदा दुखी रहूँगी। इससे मेरी गिनती छोड़ दो। तुम्हारे सुखसे ज्यादे मुझे और कुछ नहीं चाहिए। उसीको नष्ट कर दूँगी तो कहींकी न रहूँगी।····बिहारी बाबू, आप जाओ। बड़ा कष्ट पहुँचाया आपको। पर कट्टो बड़ी सुखी है। बहुत दिनोंके बाद आज मालूम होता है वह कुछ दे सकेगी जो उनकी खुशीकी राह खोल दे। बड़ा सौभाग्य है कि आखिर में उनके किसी काम आऊँगी। उनसे कहना, कट्टोपर विश्वास रक्खें, वह उनकी बड़ी ऋणी है।—नहीं, मैं ही कहूँगी।"

बिहारीने कहा—

"दुनियाँमें सभी सत्य नहीं हैं, बिहारी भी हैं। तुम्हारी तरह पुरुष भी हैं जो बिना लिये दे सकते हैं।"

"नहीं, सभी उन जैसे नहीं हो सकते। वह जो करेंगे, ठीक करेंगे। और ठीक करनेमें अपनेको बचायेंगे नहीं। देने-लेनेका कुछ सवाल नहीं है।"

"लेकिन।····"

"नहीं तुम उन्हें नहीं समझ सकते।"

इस तरह कटकर बिहारी चुप खड़ा रह गया। इस लड़कीका विश्वास, जो अब गड़कर हिलनेका नाम नहीं लेगा,—चाहे प्रलय आ जाय, चाहे हिमालय ढह पड़े; जो अटल-अडिग खड़ा रहेगा।—हो जो होना हो। इस विश्वासको देखकर वह स्तंभित रह गया। कुछ देर चुप रहकर बोला—

"परमात्मासे मैं बात नहीं करता। करूँगा तो उसे भी 'तुम' कहूँगा। क्या तुम्हें अब 'कट्टो' भी नहीं कह सकता?"

"अब जी चाहे सो कहो।····'कट्टो' ही ठीक है।" फिर हिचक कर कहा "नहीं ठहरो, पहिले उनसे मिलना होगा।"

"कुछ कहो, अब मिलूँगा तो 'कट्टो' ही कहूँगा, और तुम नाराज़ न हो

सकोगी। बिहारीसे नाराज़ होगी तो वह मना छोड़ेगा। अब जाता हूँ।"

"जाओ, पर उनसे कुछ न कहना। मैं ही आऊँगी।"

बिहारी विस्मय और विक्षोभ लेकर चला गया।

२४

सत्यको बाबूजीके पत्रकी प्रतीक्षा है, इसलिए बिहारीको नहीं जाने देता। बिहारीको भी बाबूजीके पत्रकी प्रतीक्षा है, इसलिए वह ठहर रहा है।

एक ही डाकसे दोनों पत्र आये। सत्यने अपनी डाकमेंसे बिहारीका पत्र उसे निकालकर दिया और उसकी तरफ़ बड़ी शंकासे देखा।

सत्यने अपना पत्र भी उतावले काँपते मनसे अकेलेमें खोला। पढ़ा—

"बेटा सत्य, तुम्हारा खत मिला। तुम समझदार हो, अपने लिए आप तय कर सकते हो। अगर तुम उस लड़कीका भला चाहते हो तो मैं कैसे भी मना नहीं कर सकता। गरिमाके लिए दूसरा वर ढूँढनेमें मुझे बहुत दिक्कत नहीं होगी,—उस ओरसे निश्चिंत रहो। लेकिन होगी यह एक बात दुःखकी। क्या मैं बताऊँ कि इस संबंधपर ज़्यादे ज़ोर मैं तुम्हारे ही कारण देता रहा हूँ। तुम्हें, न जाने क्यों, बेटा मानने लगा हूँ। वैसी ही मुहब्बत करता हूँ। मेरा कुछ नहीं, पर ऐसा होगा तो तुम्हें बड़ा नुकसान होगा। उसीका ख्याल है। तुमपर तो अब भी मैं दया करना चाहता हूँ,—मुहब्बत करना चाहता हूँ—तुम उधर फँस बैठे हो तो जाने दो। खुशी है कि इसमें मेरा कसूर नहीं, अपने अलाभके लिए अपनेंको ही धन्यवाद दे सकोगे।

"सत्य, मैंने उमर यों ही न खोई। कुछ दुनिया भी जानी है। दुनिया मोमकी चीज़ नहीं, और न किताब ही है जिसे पढ़कर खतम कर सकते हो। यहाँ जगह जगह टक्कर खाना पड़ता है और समझौता करना पड़ता है। जीवन दायित्वका खेल है, पग-पगपर समझौता है। जो मन नहीं मार सकता जिसे झुकना और छोटा बनना नहीं आता, जिसे दूसरोंकी सुविधा और दूसरेको निभानेकी दृष्टिसे झुकना और राह छोड़ना नहीं आता,—वह ज़िन्दगीमें कभी कुछ नहीं कमा पाता।—ज़िन्दगीका संतोष भी नहीं। सत्य, तुम्हें यह सीखनेकी आवश्यकता है। कोई यहाँ नितांत स्वतन्त्र, नितान्त एकाकी नहीं है,—जो

एसा समझता है वह दायित्वसे डरता है और कापुरुष है । सब कुछ उत्तरदायि-
त्वोंसे बँधे हुए हैं । उन्हें जंजाल समझो, कर्तव्य समझो,—लेकिन उनमेंसे भाग
निकल छूटना न चाहो । क्योंकि भाग छूटकर देखोगे, कि तुमने जीवनको
रेगिस्तान बना लिया हैं ।

"सत्य, इस वक्त तुम झमेलेमें हो । मालूम होता है कि प्रेमको जीवनमें ठीक
स्थान अभी नहीं दे पाये हो,—इसीसे दिक्कत उठा रहे हो । क्या तुम उस
लड़कीसे प्रेम करते हो ?—मैं ऐसा ही समझता हूँ । प्रेम जो क़ब्ज़ा चाहता है,—
वैसे प्रेमकी छूट समाजके लिए अनिष्टकर है । प्रेममें यदि इस आधिपत्यकी
आकांक्षा है,—यह कि वह मेरी है, मेरी ही है, मेरी हो जाय,—तो इस प्रेममें,
विश्वास रक्खो, गँदलापन है । स्वच्छ और वास्तव प्रम इस प्रकारकी आधिपत्य
आकांक्षासे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता है । वह 'उस' की प्रसन्नता, उसका सुख,
उसके संतोपकी ओर सचेष्ट रहता है,—उसपर क़ब्ज़ा कर लेना नहीं चाहता ।

"अब विवाह क्या है ? विवाह बिल्कुल एक सामाजिक समस्या है, सामाजिक
तत्त्व है । तुम भूलते हो, अगर तुम उसे और कुछ समझो । उन कुछ उत्तरदा-
यित्वोंसे, जो जीवनके साथ बँधे हैं, उऋण होनेके लिए यह विवाह का विधान
है । दुनियामें क्या करना है, उसकी दृष्टिसे लाभपूर्ण क्या होगा, क्या नहीं,
कुटुम्बियोंकी प्रसन्नता किस ओर है, और अपना स्वार्थ किस ओर है,—ये सभी
बातें विवाहके प्रश्नमें संश्लिष्ट हैं । 'स्वार्थ' शब्दसे घबड़ाओ नहीं । देखोगे तो
परमार्थ शुद्ध स्वार्थ है । लेकिन में कहता हूँ कि शब्द से मत डरो, तथ्य देखो
और वास्तविकताको पहचानो ।

"तुम प्रसन्न होगे । जो करो उसमें मेरा आशीर्वाद समझो । मैं तुम्हारा
सदा भला चाहता हूँ । तुम्हारा विवाह कब होगा, लिखना । गरिमाके विवाहमें
वैसे आओगे तो ज़रूर ? अब मैं उसे कब तक टालूँ ?—इस सालमें कर ही
दूँगा । गरिमा तुम्हें नमस्ते कहती है, विपिन नमस्कार ।

"मेरे उपदेशपर नाराज़ न होना । चाहोगे तो यह तुम्हें बहुत मदद दे
सकेगा । मैंने समझा, तुम ऐसी खरी और कठिन बातें सुननेकी ज़रूरतमें
हो ।—इसी लिए लिख दीं ।

तुम्हारा—भगवद्दयाल"

बिहारीको यह पत्र लिखा गया था—

"बिहारी, जानते हो, तुम्हारे पत्रके साथ सत्यका भी एक खत मिला था। तुमनें लिखा था वह सँभल गया है, लेकिन वह सँभलनेके मार्गपर आकर अभी बिदक रहा है। पर मैं साफ देख रहा हूँ, आयेगा आखिर वह उसी राहपर। तुम उससे कुछ मत कहो। एक बार इधरसे आशाका तार टूटा कि वह बेसहारा हो जायगा। तब उसे मेरे पास आये ही सरेगा। नहीं आयेगा तो वह भी ठीक होगा। तब उसे कठिन, ठोस, ब-मुरव्वत दुनियाके सामने पड़ जाना होगा। और यह बुरी बात न होगी। मैं जो समझाकर कहता हूँ, दुनियासे वही थप्पड़ खाकर सीखेगा। बिहारी, मैं देखता हूँ, वह तेरे जैसा बिहारी नहीं है। वह मेरे जैसा संभ्रान्त, सभ्य, पैसे और प्रतिष्ठासे सुभीतेवाला आदमी नहीं बनेगा तो मुश्किलमें ही रहेगा। झोंपड़ीमें रहकर या आवारा रहकर जीवनकी पूरी तुष्टि पा लेना उसके बसका काम नहीं है।

"तुम उसपर बिल्कुल ज़ोर न दो,—आ जाओ। अगर इस विवाहके टलनेका मुझे दुःख होगा तो सत्यके ही ख़ातिर,—गरिमाके कारण नहीं।"

"बाकी यहाँ सब ठीक है।

तुम्हारा—बाबू।"

२६

सत्यको इस खतकी एक एक बात मान्य होने लगी। कट्टोको वह प्यार करता था,—यह वह अब मान लेनेको तैयार है। इस प्रेमके ही कारण वह उसकी रक्षा करना चाहता था और अपनी बना लेना चाहता था। जहाँ यह 'अपनी' बना लेनेकी कामना है,—वह प्रेम उपादेय नहीं है। अब इसमें सत्यको संशय नहीं रहा।

फिर दूसरी भी तो बात है। प्रेम जीवनको बहलानेकी वस्तु तो बन सकती है, लेकिन जीवन उसके लिए स्वाहा नहीं किया जा सकता। जीवन तो दायित्व है, और विवाह वास्तवमें उसकी पूर्णताकी राह,—उसकी शर्त्त। इस दायित्वसे एक ख्याल,—एक भावनामें बहककर कैसे छुट्टी पाई जा सकती है? प्रेमको इस दायित्व-पूर्ण विवाहकी बातमें कैसे दखल देने दिया जाय? जीवन प्रेमसे ज्यादे

महत्त्वकी,—ज्यादे ऊँची और पवित्र चीज़ है। प्रेम,—जो अन्तमें केवल एक आदेश,—एक भाव है, उसपर जीवन कैसे निछावर कर किया जाय? वकील साहबकी यह बात उसे स्पष्ट-अमिट सत्यकी नाईं लग रही है। मानों वह जिस आधारभूत जीवन-सिद्धान्तपर पहुँचनेका अबतक प्रयत्न कर रहा था,—वह जगह जहाँ पैर टिके और जहाँ पक्की नींव बाँधकर जीवन खड़ा किया जा सके,—वह मानों उसे मिल गया। अब उसके बारेमें भूल नहीं करेगा। अब उसे साफ़ दीख रहा है—अवतक जिन बातोंको ठीक समझकर वह अपनेसे चिपटाता था, वह कोरे शब्द थे,—कोरे भाव। उनपर दुनिया नहीं टिक रही है। जो वकील साहबने लिखा,—"वह है जिसको केन्द्र मानकर दुनिया चल रही है, और व्यक्तिको चलना चाहिए। जीवन एक दायित्व है,"—कैसी सुन्दर बात है, कैसी अच्छी लगती है! और वह दायित्व है किसके प्रति?—संसारके प्रति, संसारकी उन्नतिके प्रति!

बिहारी होता तो कहता, "—अपने प्रति, अपने अंतःकरणके प्रति।" विनोदशील बिहारी और विचारशील सत्यमें यही अंतर है।

लेकिन सत्यके लिए पत्रके उत्तर-पैराग्राफ़ तो ठीक हैं, पहला गड़बड़ है। यह बात उसके अहंभावको चुटकियाँ ले रही है कि यह विवाह उलट गया तो उसकी ही मुश्किल है, गरिमाकी नहीं,—यह कि उसीपर दयाकर वह अबतक इस संबंधपर ज़ोर दे रहे थे। लेकिन सोचता है तो बात ठीक ही है। गरिमाको, जब चाहो तब, उससे हर हालतमें अच्छा वर प्राप्त हो सकता है, और उसके बिना वकील साहबके जीवनमें कोई अभाव, कोई अपूर्णता नहीं पैदा होती। जब कि इधर तो सत्यके लिए आगे कुछ दीखनेका मार्ग ही बंद हो जाता है।

पर, बिल्कुल निराश हो बैठनेकी अभी बात नहीं है।

वह कमरेमें आया। बिहारी वहीं बैठा है। बाबूजीका पत्र पाकर सत्यके प्रति उसका आदर बढ़ गया है। उस पत्रसे बिहारीने देखा कि सत्य अब भी अपनेसे झगड़ रहा है, हार मान नहीं बैठा। और यह अपने आपसे बराबर लड़ते रहना ही तो जीवनमें एक क़ीमती चीज है!

लेकिन बिहारीको यह नहीं मालूम कि सत्य हारको हार नहीं मान रहा, वह लड़ाईसे विमुख होकर इस क़ीमती लड़ाईको बिल्कुल व्यर्थ चीज़ ठहराकर उसे

-स्वीकार कर रहा है।

विहारीने कहा—आओ भाई सत्य, मेरा धन्यवाद लो।

"धन्यवाद कैसा ?"

"पता चला है कि मुझसे कहने के बाद भी तुम कट्टोके बारेमें बिल्कुल लापरवाह नहीं बन चुके थे।"

"हाँ, बाबूजीको कुछ ऐसा ही लिखा था। लेकिन..."

"लेकिन ?..."

"लेकिन जीवन एक दायित्व है।..."

"फिर ?"

"और...और प्रेम एक अस्थायी भावना। जीवनके स्थायित्वको अस्थायी भावनाओंका आधार नहीं काम देगा।"

"सीधी सादी हिन्दी भी क्या काम नहीं देगी ? भई, ऐसे तो बात करो जो यह विहारी समझ जाय ! जीवन का स्थायित्व कैसा ?—क्या जीवन स्थायी चीज़ है ? यानी संसारमें बिताये जानेवाले ये पचास-साठ-सौ साल ?—स्थायित्व की परिभाषाकी हद क्या सौके अंक तक ही है ?"

"ग़लत मत समझो। जीवन स्थायी है, उसे एक दिशाकी ओर ही बढ़ते रहना चाहिए,—यही उसका स्थायित्व है।"

"...और यही आपका पांडित्य है !"

"विहारी, तुम यह नहीं समझते, इसमें मेरा क्या दोष ? अपनेको टटोलता हूँ, तो देखता हूँ, कि कट्टोकी ओर मैं उस भावसे खिंच रहा हूँ जिसे प्यार कहा जाता है। यह प्रेम एक भाव है, और भाव पैदा होने और मिटनेके लिए होता है। अर्थात् यह क्षणस्थायी है। अब विवाह एक टिकनेवाला सत्य है, दायित्वका अंश है। प्रेमको उसमें दखल देने देना ठीक नहीं होगा।"

"और सब कामोंमें बहुत ज्यादे अकलको भी दखल देने देना ठीक नहीं होगा।—तो आपने इतने दिनोंमें यह उधेड़-बुन की है ? और आपको मालूम है, इन दिनों आपकी कट्टो क्या करती रही है ? वह आपको ध्याती रही है, और आपको मन ही मन परमात्मा बनाती रही है।"

"लेकिन मैं क्या करूँ ? प्रेममें जहाँ कब्जेकी इच्छा है, वहाँ मैल भी है।

क्या इस मैलका काबू स्वीकार करूँ ? "

"नहीं जी, सो क्यों ? विशुद्ध विशुद्धताको ही स्वीकार करो। वह विशुद्धता क्या है, जानूं तो ? "

"जिस बातको मानकर दुनिया खड़ी है, जिस दुनियाकी कीलीको हम और तुम नहीं बदल सकते, उसको हिलानेकी कोशिश करनेके बजाय हम मजबूत करनेमें सचेष्ट हों तो ज़्यादे कार्यकर हो सकते हैं। और वह आधार-भूत तत्त्वकी बात यह है कि कोई नितांत स्वतंत्र नहीं है, सब ही उत्तरदायित्वोंमें बँधे हुए हैं, उन्हींमें उनका मोक्ष और कृतार्थता है "

"बहुत ठीक। आपके जीवनका एक उत्तरदायित्व है गरिमाका पति होना। बहुत सुंदर—और आगे ? "

"बिहारी, तुमने अभी दुनियापर हँसना ही सीखा है। इसमें कुछ नहीं लगता। पर उसे समझना मुश्किल है। सो तुम्हें बाक़ी है। "

"ओ हो, एक ही क्षणमें आप दुनियाको समझ बैठे ! ऐसी दुनियाकी समझ आपको मुबारिक और उस समयके बाद रोना मुबारिक। मुझे तो परमात्मा मेरा हँसना ही दिये रक्खे। "

"बिहारी, तुम अभी नहीं समझोगे। जाने दो। "

"ठीक है, आप समझ गये। ऐसे विशाल गहन तत्त्वकी बात बिहारीके इस हल्के-से हँसोड़ दिमाग़में नहीं आयेगी। लेकिन अब बताइए, क्या ठीक रहता है ? क्योंकि दुर्भाग्य कहो या सौभाग्य,—या दोनों ही, वह आपकी दायित्व-परिणीता गरिमाका भाई है। और आपके निर्णयको सुनकर घर पहुँचानेका कर्तव्य उसपर आ पड़ा है।"

"बिहारी, बाबूजीकी जो इच्छा है, माँ जिसके लिए कबसे ज़ोर दे रहीं हैं, जिसमें तुम भी और गरिमा भी शायद हृदयसे सहमत हैं,—उसे मैं नहीं टालूँगा। बड़ोंकी बात मानूँगा,—उनका आशीर्वाद खो न सकूँगा। "

"शुभमस्तु।····लेकिन बिहारी श्रीस यधनजीको एक सूचना देना चाहता है। कट्टो उनसे मिलने आया चाहती है। "

खिड़कीमेंसे कट्टोको आते बिहारीने देख लिया है।

"एक निवेदन और है," बिहारीने कहना जारी रक्खा "कट्टोकी संस्कृत-

शिक्षा अगाध नहीं है। उसने अभी विश्वकी फ़िलासफी भी नहीं पढ़ी है। इससे उसके सामने श्रीसत्यधनजी संस्कृत फ़िलासफी ज्यादे न बखरें। कहीं वह समझ न सके और उन्हें परमात्मासे भी ऊँचा मानने लग जाय। कट्टोकी जरा भी पर्वाह करते होंगे, तो विश्वास है, सत्यजी मेरा अनुरोध टालेंगे नहीं।"

तभी कट्टो दर्वाजेमें आई।

२६

कट्टो दर्वाजेमें आई,—बिहारी चलने लगा।

"नहीं, जाओ नहीं।" कहकर कट्टो सत्यसे कुछ हाथके फ़ासलेपर खड़ी हो गई।

सत्यपर उसकी आँखें पड़ रही हैं। उनमें कैसा भाव है। जैसे एक अकिंचन अनुग्रहीता किंकरी उनकी पदधूलिकी भीख लेने आई है,—बस और कुछ नहीं।

"तुमने इनका परिचय मुझे क्यों नहीं बताया ?" कट्टोने सत्यसे कहा।

"बताया तो····"

कट्टोने शरारत-भरी मीठी-सी हलकी-सी एक हँसी हँसकर कहा—

"किस कामके लिए आये, सो तो····।"

इस समय सत्यको फ़िलासफ़ीके टेकनकी बहुत सख्त जरूरत है, क्योंकि मन गिरता जा रहा है और उसे इसी टेकनपर टिकाकर मजबूत रखना होगा। अच्छी तरह इस तत्वज्ञानकी टेकनीको जमा-जमू कर उसने कहा—

"वह बिहारीने खुद ही कहनेका जिम्मा ले लिया था।"

"कट्टोको मास्टरका यह पक्कापन बड़ा अच्छा लग रहा है।—

"सो इन्होंने ही तो घर आकर सब बताया।"

अब सब चुप।

फिर कुछ देरसे कट्टोनें ही कहा—

"तो हमारी जीजीको कब लाओगे ?"

इस कल्पनातीत बात,—इस अनोखे दावके आगे तत्त्वज्ञताकी सुसन्नद्ध शब्द-सेनाके रहते भी सत्य सिट्टी भूल गये। चुप रहे, कुछ उत्तर न बन पड़ा।

"बोलो, कब आयेगो हमारी जीजी ?"

धीरे धीरे अपने पक्षका भान इन्हें हुआ । इच्छा-शक्तिको कड़ा किया, हठात् हँसकर बोले—तुम चाहती हो, मैं जीजी लाऊँ ?

"वाह नहीं चाहती ? जो तुम चाहते हो, सो सब चाहती हूँ । मेरा परमात्मा जानता है ।"

इस अबोध प्रतिपक्षीके आगे ज़ोर लगाकर तैयार की हुई सत्यकी सेना कुछ काम नहीं दे सकेगी । सत्य फिर जैसे खो गये, जैसे वह आधार मनके नीचेसे खिसकने लगा और मन धँसकनें लगा ।

"इन बिहारी बाबूने मुझसे कहा था कि तुम्हें मेरी ज़रूरत पड़ गई है । भला मैं सोच सकती थी, कभी मेरी भी ज़रूरत पड़ जायगी ! अब हाज़िर हो गई हूँ । बोलो, सामनें खड़ी हूं, । मैं तो तुम्हारी ही हूँ । मुझसे बोलते,—मुझसे माँगते डरते हो ? जैसे परायेसे कुछ माँग रहे हो ? छिः,—सो नहीं । . . तुम्हारे काम नहीं आई, तो हुई ही क्या ?"

बोले जाओ कट्टो, मास्टरजी तो अचरजसे तुम्हारी सब बात सुन रहे हैं । जुबान उनकी जकड़ गई है और डरके मारे हिल नहीं सकती ।

"जो कुछ भी तुम चाहते हो सबमें क़ट्टोकी खूब राय है । कट्टो भी उसे खूब चाहती है । उसका पूरा पूरा विश्वास रक्खो । तुम्हारी ख़ुशीमें उसक़ी खुशी है । तुम्हारे सोच में उसकी मौत है। अपने कामोंमें कट्टोकी गिनती मत करो,— वह गिनने लायक नहीं है । उसकी खुशी तुममें ही शामिल है ।बस । तुम ब्याह करना चाहते हो, तो कट्टो तुम्हारी सबसे पहले तुम्हारा ब्याह चाहती है । ओहो, वह कितनी खुश होगी, खूब खूब खुश होगी । तुम कट्टोको क्या समझते हो ?— वह तुम्हारी नाख़ुशी लेकर जिंदा रह सकेगी ?—और क्या समझते हो कि वह तुम्हें समझती ही नहीं ? वह तुम्हें खूब समझती है । तुम जो करोगे, अच्छा करोगे, और कट्टो उस अच्छेमें खूब आनन्द मनायेगी । तुम तो कट्टोके मालिक हो,— फिर उसकी फिकर क्यों करते हो ? . ."

सत्य सफ़ेद-फक हुए खड़े हैं । बिहारी एक कोनेमें मुँह फिराकर न जाने क्या देखता हुआ खड़ा हो गया है ।

"अरे, ऐसे खड़े हो ? क्या गुम्मा-सुम् . . बिहारी बाबू ।" अंतिम

-शब्दोंके निकलते निकलते निगाह बिहारीकी ओर फिरी, " अरे, यह बिहारी बाबूको भी क्या हो गया है ? .. "

बिहारीको क्या हो गया है, कुछ नहीं ! वह तो हँसता हुआ बढ़ा आ रहा है । आँखें लाल हैं, गाल धोखा देकर भेदकी बात कहनेको हो रहे हैं,—फिर भी बिहारी हँसता बढ़ा आ रहा है । सामने आकर बोला—

" यह हाज़िर हैं, बिहारी बाबू । "

" तुम्हें कौन-सा भूत चढ़ता है, बिहारी बाबू ? "

" मुझे तो एक ही भूत चढ़ता है,—हँसीका । वह जब कामसे कहीं जाता है, तो मुझे मुँह छिपाकर खड़ा हो जाना पड़ता है । "

" देखो, यह मुझसे बोलते नहीं । इनपर क्या फिर भूत चढ़ गया है, बिहारी बाबू ? "

" चढ़ा भी होगा तो उतर जायगा । अब वह नहीं चढ़ा करेगा । इन्होंने एक देवीकी आराधना की है । तुम नहीं जानतीं उसे । उसका नाम है फ़िलासफ़ी । वह ऐसे ऐसे भतोंको पास नहीं फटकने देती । मेरेवाला भी उस देवीसे बहुत घबड़ाता है । "

" इनको बुलाओ तो.. "

" चेष्टा करता हूँ । पर सम्भव है इनके मुँहसे अभी वह देवी ही बोल उठे ; तब तो उसकी बात शायद है कि आपके समझमें न आये । पर आप घबड़ायें नहीं,—समझनेके लिए हैरान न हों, क्योंकि वे बातें बिरलोंहीकी समझमें आती हैं । "

इतना कहकर बिहारीने सत्यके कानमें गुनगुना दिया, " गड़बड़ करोगे तो गरिमा गई, कट्टो चढ़ी ! तब तो गजब हो जायगा ! चेत उठो । "

सत्य एक दम झल्ला पड़े—बिहारी, चले जाओ तुम यहाँसे !

बिहारीने फ़रियादके ढंगसे कट्टोसे कहा—

" भूत तो भागा, पर साथ ही मुझे भागना पड़ता है ! —यह क्या न्याय है ? "

" बिहारी बाबूको रहने दो न । " कट्टोने मानों निर्णय देते हुए कहा, " उन्हें क्यों भेजते हो ? "

सत्य अब फिर चुप ।

कट्टोने कहा, "बोलो । बोलोगे नहीं ?"

चुप ।

"बोलोगे नहीं, तो मैं जाऊँ ?"

"——"

"जाऊँ ?"

"जाओ ।"

"तब एक बात कहती हूँ । एक,—बस एक । उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा । करोगे ?"

"कहो ।"

"करोगे ?—कहती हूँ, तुम्हारा उसमें कुछ नहीं जायगा । कहो,—करोगे ।"

"करूँगा ।"

"जीजी आयेंगी तो पहले मेरे यहाँ खायेंगीं । मैं पहले खिलाऊँगी,—चाहे कुछ हो, मैं खिलाऊँगी । न होगा, तो तुम्हारे घर आकर मैं बनाऊँगी । पर पहली रोटी वह मेरे हाथकी खायेंगी । इतनी अरदास मेरी कबल रखनी होगी । कहो, हाँ ।"

सत्यने अपना सारा बल कण्ठमें खींचकर कहा—'हाँ ।'

इस 'हाँ' को सुनकर कट्टो पत्थरकी मूर्ति-से खड़े सत्यके पैरोंमें जाकर लोट गई। एक बार और लोटी थी । तब शाम थी, अब दोपहर है । तब स्वर्गके द्वार खोले गये थे आमन्त्रणपूर्वक, अब आमन्त्रित कट्टोके मुँहपर ही ढाँप दिये गये हैं । खुले थे तब भी वह इन पैरोंमें लोटी थी, बन्द कर दिगे गये हैं तब भी वह इनमें ही पड़ी है । उसकी यह कैसी समझ है !

कुछ देर सन्नाटेके बाद आवाज़ आई—जाऊँ ?

सत्यने भरी आवाज़से कहा—"जाओ ।"

"जाऊं ?"

"जाओ ।"

तब वह कट्टो उठी । आँसू ढरकना बन्द हो गया है, मेहके बाद अब चाँदनी मानों मुँहपर थिरकनेकों रही है,—यह अब ताजी धुली-हुई कट्टोकी किरण-

-कौमुदी मानों हँस देगी ! बोली—बिहारी बाबू, घरतक साथ चलोगे?—काम है।
बिहारी बाबू मानों जग उठे, फिर भी अधजगेसे कट्टोके पीछे पीछे चल दिये।

२७

वही कमरा है, वही आला है, वही कट्टो है। फिर भी वही नहीं हैं। उसी कटोरेमें वैसा ही सफ़ेद दूध है,—पर जैसे जादूका फूँक फेर दिया गया है, और वह दूध नहीं हालाहल है। इस कमरेकी स्मृति, यह सामनेका आला जिसमें उस दिनका छः पैसेका दर्पण रक्खा है और वह कंघा और वह टिकुलीकी डिबिया,—मानों सब उसको चिढ़ाते हुए उससे कह रहे हैं, तुमने हमें धोखा देकर रक्खा है, हम पराये हैं! पराये हैं!!' स्मृतियाँ उमड़ उमड़ कर कह रही है 'तुम स्वप्नकालमें हमसे खूब खेलीं। अब तुम्हें जगा दिया है, अब हम जाती हैं। जाती हैं,—कहीं और।' वह सब अँगूठा दिखा दिखा कर मानों कह रही हैं, 'कहीं और! कहीं और!!' जो अभी बीते क्षण तक सत्य था, वह सब कुछ इन स्मृतियोंका साथ देकर उसे बिरा रहा है, जा रहा है 'कहीं और, कहीं और!!!

ठठोलीं करते हुए, पराये दिखते हुए, इस कमरेमें ही बिहारी खड़ा है।

कट्टोने अब बिहारीको देख पाया,—ऐसे विस्मित-चकित भावसे देखा मानों पूछना चाहती है, 'तुम कौन हो, क्यों आये?—क्या चाहते हो?' बिहारीने निस्संकोच 'कट्टो'का हाथ अपने हाथोंमें लेकर कहा, "मैं गरिमाका भाई हूँ। समझो कौन हूँ? अब 'कट्टो'के सिवाय कुछ नहीं कहूँगा।"

"जो चाहे कहो, बिहारी बाबू। तुम उनके मित्र हो, और मेरे लिए सब कुछ हो।"

बिहारीने बड़ी तीक्षण जिज्ञासा, बड़ी आशंका, बड़ी आकांक्षासे पूछा—

"कट्टो, अब क्या···?"

"पहले एक थे, अब दो हो गये हैं। दोकी सेवा करूँगी। मेरा तो काम और बढ़ गया है।"

बिहारी कहना चाहता है, सत्य इस योग्य नहीं है। पर सामने खड़ी इस भक्तिनके आगे मूर्तिपर हाथ रखते डर लगता है। कट्टोकी खातिर वह सत्यको

अब कुछ न कहेगा ।

"सत्य अब तुम्हारी सेवा नहीं लेगा, कट्टो । न तुम्हारी जीर्ज. यह होने देगी ।"

"न सही, मेरा काम मेरा काम है । तनसे नहीं तो मनसे तो करूँगी ही ।"

इसी क्षण भीतर कुछ उठा और बिहारीके शरीर और आत्माको एक रंगमें रँग गया । परमात्माने हम दोनोंको साथ ला दिया है,—अब दोनों धाराएँ एक होकर वहेंगीं, उनका कुछ और काम नहीं होगा । अपनी संयुक्त-जीवन-धारापर किनारे किनारे तीर्थ स्थापित करें और यह पुण्य-गंगाकी तरह लोकमें बहती निकलती चली जाय,—कल्याण सरसाती हुई, खेतीको हरियाती हुई, लोगोंको नहलाती हुई, लहराती हुई अनंतसागरमें विलीन हो जाय । विहारी एक क्षण इस लोकोत्तर भावनाके प्रबल प्रस्फुटनमें आत्मसात् हो गया । फिर बोला—

"कट्टो, एक साक्षात्कार हुआ है ।..."

यहाँ उसका कंठ काँप गया और सुर लरज आया ।

"बिहारी बाबू ! ..."

वह भी इतना कहकर चुप हो गई । रुककर फिर कहा—

"यह न समझो, मैं तुम्हें ग़लत समझती हूँ । तुममें तो कुछ समझनेको है ही नहीं । जो बाहर है, वही भीतर भी है । भीतर वही विनोदका झरना झरता रहता है, जिसका आधा जल आँसूका और आधा हँसीका है, और जिसमेंसे हर बात आर-पार दिखाई देती है । लेकिन अनहोनी घट नहीं सकती, होनी टल नहीं सकती । जो हो गया, हो गया । उसे मिटाना अब बससे बाहर की बात है । जो चढ़ चुका,—उसे चरणोंमें वापिस खींच नहीं ला सकती । वह अब मेरा नहीं रह गया । लेकिन .."

"लेकिन ...? " बड़ी व्यग्र उत्कंठासे बिहारीने कहा—

"लेकिन एक बात है । सोती हूँ तो आकाश-गंगाको ऊपर खिलखिलाते देखती हूँ । वह हमपर नीचेको देखती रहती है । हमारी जगतकी यह गंगा भी ऐसे ही ऊपरको देख देख कर बहती रहती और हँसती रहती है । मुझे लगता है कि ये दोनों गंगाएँ एक दूसरेको देख देख कर ही जीती हैं । इस सारे अनंत शून्य,—किसी गणनामें न आ सकनेवाले आकाशको भेदकर इनकी हँसी एक दूसरेको परस्पर कुशल-क्षेम दे आती है । दोनोंका मन एक है, नियम एक है !

मालूम होता है, दोनों आपसके समझौतेसे इतनी दूर जा पड़ी हैं कि दोनों एक ही उद्देश्यको दो रीह दो जगह पूरा करें । दूर हैं, फिर भी पास हैं । अलग हैं, फिर भी एक हैं। विहारी बाबू.. विहारी बाबू, क्या यह नहीं हो सकता ?—क्या हम भी दो ऐसे नहीं हो सकते ? दूर, फिर भी बिल्कुल पास। अलग, फिर भी अभिन्न । दो, फिर भी एक । एक ही उद्देश्य, एक ही जीवन-लक्ष्यमें पिरोये हुए ?"

विहारीने कहा—कट्टो ! ..

कट्टोने कहा, "आओ, मेरे साथ बँधते हो ? मैंने तुम्हें देखा, तुमने मुझे देखा। तुमने मेरी भाषा भी देखी, भाव तो देखे ही । 'वह' नहीं जानते में कितनी पढ़ गई, कोई भी नहीं जानता, मैं भी नहीं जानती थी। अभी जानी हूँ, जब तुम जाने हो । इतनी हिन्दी जानने के बाद कुछ करोगे तो तुम्हें भी मदद पहुँचा सकूँगी । इतनी भाषा, अम्मांके बाद, मुझे रोटी भी दे ही देगी। इस तरह, पढ़ने-लिखनेके लिहाज़से भी तुम्हें मुझपर शर्म करनेकी ज़रूरत नहीं । बोलो, बँधते हो ? "

"भाड़में फेंको पढ़नेको। .. बँधता हूँ ।"

"विहारी बाबू, बड़ा कठिन यज्ञ सम्पन्न करनेके लिए बँधते हैं हम । सोच लो तुम । बहुत लम्बा जीवन आगे पड़ा है.. "

"तुम मुझसे छोटी हो । तुम्हारे लिए व्रत और कठिन.. "

"मुझपर तो आ पड़ा है, पर तुम .. ? "

"कट्टो, बँधता हूँ.. ।"

"उस यज्ञके लिए सबसे सुंदर शब्द है मेरे पास 'वैधव्य' । अर्थ है, 'आत्म-आहुति ।' बँधते हो ? "

"बँधता हूँ ।"

कट्टोका बायाँ हाथ बढ़ा, विहारीका दायाँ । दोनों एकमें गुंथ गये ।

"हम दोनों वैधव्य-यज्ञकी प्रतिज्ञामें एक दूसरेका हाथ लेकर आजन्म बँधते हैं। हम एक होंगे,—एक प्राण, दो तन। कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा ।" —कट्टोने कहा ।

"हम दोनों वैधव्य-यज्ञकी प्रतिज्ञामें एक दूसरेका हाथ लेकर आजन्म बँधते

हैं। हम एक होंगे,—एक प्राण दो तन । कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा ।"
बिहारीने दोहरा दिया ।

कट्टोने कहा—

"आज मेरा विवाह पूर्ण हुआ । वैधव्य सार्थक हुआ ।"

बिहारीने कहा—

"यह महाशून्य साक्षी हो, हम कट्टो-बिहारी सदा एक दूसरेके प्रति कट्टो-बिहारी रहेंगे, न कम न ज्यादे ।"

फिर बिहारीने कहा, "कट्टो, कहो, जो दूँगा, लोगी ।"

"जो दोगे, लूँगी ।"

कुछ देर वह चुप रहे । फिर कट्टोने थोड़ा हँसकर कहा—

"हमारे जीवनका अकेलेपनसे अनायास इस तरह उद्धार हो गया । अब आओ, मेरा एक काम करो । तुम घर कब जा रहे हो ?"

"आज रात, नहीं तो कल सवेरे जरूर ।"

कट्टोने तिसपर टिकुली की वह डिबिया ली, कंघा और शीशा, और हाथोंसे वह दो लाल चूड़ियाँ निकालीं, उन्हें एक पोटलीमें बाँध दिया, कहा—

तुम्हरी बहिन,—क्या नाम है ?—गरिमा । वही मेरी जीजी । उन्हें यह जाकर देना । कहना—एक कट्टो है, नटखट लड़की, गँवारिन, उसने ये दी हैं । वह उसके मास्टर रहे हैं और वह उसकी जीजी हैं । कहना मैंने उनसे वायदा ले लिया है, पहले जीजीको मेरे यहाँ खाना होगा । यह भी कहना, कट्टोको उन्हें अँग्रेज़ी पढ़ानी होगी । और कहना कट्टोको असीस भेजें । सेवकाईका मौक़ा मिलेगा, एक बार तो उससे पहले भी आशीर्वाद दे ही दें ।...यह सब कहोगे न ? कहो—कहोगे ।"

"जरूर कहूँगा । और कहूँगा, यह सुहाग कट्टोका उतरन है—।"

हैं हैं । यह क्या कहते हो ? यह तो मैंने जबर्दस्ती चढ़ा लिया था । उतरन कैसे हुआ ? नहीं नहीं, बिल्कुल नहीं । मेरे पास शुभसे शुभ जो चीज़ है, जिसपर मैंने प्यारीसे प्यारी भावनाएँ अर्घ्य-रूप चढ़ाई हैं, वही चीज़ मैं उन्हें दे रही हूँ ।"

"सब कहूँगा । और कहूँगा, कट्टोके साथ मेरा वरण हो चुका है ।"

"कह देना ।"

"तो मेरा काम हो चुका ?"

"हाँ।"

"जाऊँ ?"

"जाओ,—माँके पैर छूते जाना।"

"जानेसे पहले कुछ दोगी नहीं ?—यह अच्छा वरण !"

"क्या दूँ ?"

"कुछ भी तो—"

"अच्छा लो..."

तभी उसे एक आसनपर बैठाकर झट-से चर्खेपर सूत काता। हल्दीके रंगमें उसे रंगकर माला बनाई। दोनों हाथोंसे वरमालाके रूपमें पकड़ा, धोतीका छोर ज़रा आगेको किया, और एक खट्टी मीठी हँसी हँसके बिहारीके गलेमें डाल दिया। फिर एक नमस्कार किया, चरणोंमें हाथ लगाया और फिर उस हाथको अपने माथेसे छुआ लिया।

इस समारोहमें बस उस कमरेकी स्तब्ध शून्यताने मानों अपनेको खोकर मौन योग दिया। बाहरी आँखें इस शुचि व्यापार पर पड़नेसे बची रहीं। इस ग्रंथि-बंधनकी एकमात्र साक्षी होकर अचरज-प्रकृति मानों जी-ही-जीमें मग्न-मूक थी।

"माला सत्यको दिखाऊँगा।" बिहरीने मंत्र-बद्धताको तोड़ कर कहा।

"तुम्हारी है, जो करो।"

"जाता हूँ, कब मिलना होगा ?"

"देखो—"

"अच्छा, कट्टो, प्रणाम। बिहारीका प्रणाम। प्रणाम लो और यह लो।" एक बुरी तरह गुड़ीमुड़ी हुआ काग़ज़ थमाकर बिहारी निकला, माँकी चरण-रज ली, रुका नहीं, चला गया।

सौ रुपये का नोट खोले कट्टो कुछ सेकिंड खोई-सी खड़ी रही, फिर चौकेकी संभालमें चली गई।

———

२८

बिहारी अपने घर पहुँचा। बाबूजी बैठकमें ही बैठे हैं।

ताँगेसे उतरा नहीं कि पूछा, "आ गये!..." अर्थात्—'क्या लाये?'

"हाँ, आ गया।"

"क्या बात रही?"

"अभी आता हूँ, ज़रा यह सामान...ऊपर..."

"हाँ हाँ।"

बाबूजीने देखा कि सामान नौकर ले ही जा रहा है, एक मिनटको तो यहाँ बैठ ही सकता था, बात कहनेमें देर लगती कितनी है, पर नहीं, ऊपर!...ख़ैर, लक्षण बुरे नहीं हैं।

बाबूजीसे बात तो कहेगा ही, पर कट्टोका काम ख़त्म करनेकी उसे जल्दी है। सबसे पहले कट्टो, फिर और कोई। ज़रा-सी तो पोटली है, जेबमें डालकर ऊपर पहुँचा। पुकारा—"गिरी!—गिरी!..."

गिरी चौकेमें है। बाल सुखा-सुखू कर अभी गई है देखने कि महाराजिन सब कुछ ठीक कर रही है या नहीं। महाराजिनको इतना कह चुकी है, फिर भी कुछ न कुछ गड़बड़ हो ही जाता है। गरिमाको क्या वह जानती नहीं है? ठीक नहीं करेगी तो दिल्लीमें, महाराजिनोंकी कमी पड़ी है? सो ही बात गरिमा अब बारहवीं बार महाराजिनके कानके रास्ते अक़्लमें प्रवेश करा देनेको वहाँ पहुँची है। मोटी, फूले नथनोंवाली, सागके बाज़ारमें जो सब कुँजड़ोंसे बाज़ी ले जाती है, वही कुसलो इस छोटी मालकिनके सामने थर-थर काँपती है। इस देहके कम्पनमें अगर नोन बटलोईमें गिरते गिरते खीरकी पतीलीमें पड़ जाता हो तो पाठक अचरज न करेंगे और उसे क्षमा कर देंगे। लेकिन जिन्हें वह खीर खानी पड़ती है, उन सबके रोषकी सम्पूर्ण स्वत्वाधिकारिणी प्रतिनिधि होकर जब वह छोटी मालकिन साँपिनकी तरह चमकती और फुफकारती महाराजिनके सिरपर आ खड़ी होती है तो अगर नोन खीरमें नहीं पड़ता, तो मिर्च दालके बजाय आँचमें पड़ जाती है। तब महाराजिन खाँसी और छींकसे व्यग्र होकर अपनी सफ़ाई देनेमें अक्षम हो जाती है और छोटी मालकिन भी अपने गुस्सेको आधा निकला हुआ और आधा पेटमें ही खौलता हुआ लेकर वापिस पलायन कर जाती है। तब वह छींकती भी

जाती है और झींकती भी जाती है। ऐसा ही साधारण संयोग इस समय भी घट गया था। चौकेमें उसने भैया का आना सुना। तभी मिर्चाहुति चूल्हाग्निमें छट गई। और तभी वह बाहर दौड़ी और तभी बोली—

"मैं...छिः—छीं...भैया...छिः..."

भैयाने यह अपनी अगवानीपर लगातार छींकोंकी सलामी सुनी।

"यह क्या मामला है ?"

"वह कम्बख़्त—आक् छिः, डैम...छिः..."

"यह छिः और सुशब्दोंकी बौछार मेरे आते ही ..."

"यह डैम् रॅस्कल—आ...आ...क्...छिः..."

"मुझे माफ़ करो। मैं चला जाता हूँ, भई।"

"शैतान, कल से ही.. छिः छि.. छि.. छिः.."

छींकोंका प्रकोप शांत हुआ तब बिहारीने संबोधन किया—

"गिरी.."

"वह महाराजिन कलसे नहीं रह सकती। मैं कहती हूँ.."

"मेरी बात सुनती हो या.."

"सुनती हूँ, लेकिन तुमने ही.."

"हाँ, मैंने ही सृष्टि रची, और मैं ही बिगाड़—"

"तुमने ही यह महाराजिन रखवाई थी।"

"अब दोष नहीं होगा, तो। बस, अब तो स्वस्थ हुईं ?—या अब.."

"स्वस्थकी बात नहीं, कोई न कोई गड़बड़ कर ही देती है।"

अच्छा, अब इस अध्यायको खतम करो। प्रकोप-पर्व समाप्त, नवीन पर्व आरम्भ। सुनो—"

सारी आकृति और चेष्टामें 'सुनाओ—' का भाव लेकर वह सुननेको खड़ी हो गई।

"मैं वहाँसे आ गया हूँ। तुम्हारे लिए सोहाग-कोथली ले आया हूँ। लो।"

बिहारीने वह पोटली खोलकर गरिमा के आगे फैला दी।

"किसने दी ?—उस...?"

"हाँ उसने ही। जानती तो हो उस कट्टोको ?"

गरिमा कट्टोको खूब जानती है। सत्यका रुख अब तक वह खूब समझती जा रही थी। जानती थी,—जड़में कट्टो ही है। यह जानते ही उसने उसे अपने प्रतिद्वंद्वीके रूपमें स्वीकार कर लिया था। बाबूजी और सब जोर लगा रहे हैं, तब भी वह रुख अनमनाया ही हुआ हैं,—यह देखकर इसने समझ लिया प्रतिद्वंद्व प्रबल है। तभी इसके बड़प्पनने उठकर इस हलकी-सी उठती हुई स्पर्द्धाको तीक्ष्ण धार दे डाली। 'वह गँवार छोकरी मेरा मुक़ाबला करेगी—मेरा ?' यह भाव उसे दिन-रात सुलगाये रहने लगा। यह सुलगता हुआ भाव कभी महाराजिनके सिरपर फूटता था, कभो माँके, और कभी बाबूजीके। गरिमा सत्यको चाहती थी, इसमें सन्देह नहीं। वह युवती थी तिसपर पढ़ी-लिखी। और सत्य भी शकलमें बिल्कुल अपरूप नहीं था। और अनिच्छा यौवनका स्वभाव नहीं है। लेकिन जब कट्टोका नाम सुना, और वह तकिया देखा, तब यह साधारण-सा खिन्नाव एकदम ईर्षाकी धारका तरह पैना हो उठा। तब यह सत्यको प्यार करनेपर लाचार हो गई। और यह प्यार ही काटने और घायल करने लगा।

अब बिहारी पक्की खबर ले आया है, और कट्टोने दी हैं कुछ चीजें ! इन सबको अपनी जीतकी भेंटके रूपमें उसने स्वीकार किया। कट्टो कैसी कट गई होगी, देखो न, चली थी मुझसे बदने ?—आदि आदि चहकते विचारोंमें वास्तव संवादकी खुशी मानों खो गई है। सत्यसे विवाह होगा, यह बात तो जैसे उसके ध्यानमें है ही नहीं; मैं जीती हूँ, कट्टो आखिर हार गई है,—इसीकी नशीली खुशीमें यह खुश है।

"तो यह उसीने दीं ?"

"हाँ—"

"वह क्या यह जानती नहीं, मैं उस जैसी गँवारिन नहीं हूँ ?"

"वह कुछ नहीं जानती..."

"मेरे लिए इनका उपयोग कुछ नहीं, सिवाय...फेंक देनेके !..."

"हैं हैं, फेंकना नहीं, मेरी क़सम।"

"य' कंघा, य' शीशा, और ओ-हो यह कुंकुम !—छि:!—मैं क्या करूँगी इनका ?—बड़ी सौग़ातें हैं न ?"

"गिरी, ये सौग़ातें ही हैं। मेरी क़सम जो इन्हें फेंका तो।"

"ऐसे इनमें क्या लाल हैं ? कितने पैसेकी होंगी ये सब ?"

"गिरी, कट्टोनें कुछ कह भी दिया है तुम्हें कहनेको..."

"क्या क्या? सुनूँ तो !"

कहा है कि कहना, 'वह मेरी जीजी हैं। यहाँ आयेंगीं तो मैं उनसे अँग्रेजी पढ़ूँगी और टहल करूँगी।' और...और गिरी, तुम्हें वहाँ पहली रोटी उसके घेर—उसके हाथकी खानी पड़ेगी। कट्टोने सत्यसे वायदा ले लिया है। और,—और उसने आशीर्वाद माँगा है।

यह वात गरिमाके भीतर तक पहुँच गई, लेकिन जैसे भीतर उसको आश्रय नहीं मिला। गरिमा इस वातको कुछ समझ पाई नहीं और उसको लेकर वह उधेड़-वुनमें पड़ गई। इसके कहनेका क्या तात्पर्य है, कैसे वह कह सकी यह वात !—सो उसकी समझमें नहीं बैठता। उसने कहा—

"उसे मानों और कुछ कहनेको नहीं था ?"

"गिरी, एक वात कहूँ ?"

"कट्टोके वारेमें ?—कहो, जो कहना चाहो।"

वह अव कट्टोको रोपका पात्र नहीं देखती। कभी उसके वारेमें सोचा था,—मानों उसपर अनुग्रह किया था। अव मानों उस उपेक्षित चिन्ताकी आवश्यकता शेष हो गई है। अव वह कृपाके साथ उससे सहयोग-सम्वन्ध स्थापित कर लेगी। अव काहेका खिंचाव,—काहेका तनाव ? मानों, जो पहले रोष किया, अव अनुग्रह दिखाकर उसका सारा वदला चुका डालना चाहती है। इसी लिए आग्रहके साथ उसने कहा, "कहो जो कहना चाहो। न हो, तो कहो वह कैसी हैं। मैं उसे अब प्यार करूँगी।"

"गिरी, वह सुन्दर नहीं है। पढ़ी-लिखी ज्यादे नहीं है। हम-वह बँध गये हैं, मैंने विवाह किया है।"

इसके लिए गरिमा तैयार नहीं थी। यह सौभाग्य क्या कट्टोके योग्य है ? कट्टोंको प्यार तो करेगी,—करती; पर यह एकदम इतना सौभाग्य !—कट्टोंने यह अपनी योग्यतासे कमाया नहीं हैं, निस्संशय छलसे प्राप्त कर लिया है।—इतनी उसकी स्पर्द्धा ! उसनें कहा—

"ओह तुम्हें क्या हो जाता है, भैया। उसने जादू कर दिया है, चुड़ै... कहींकी !"

"हाँ, जादू किया है। वह जादूगरनी है। मैंने ही उसके जादूसे सत्यकी रक्षा की है। पर रक्षा, रक्षामें खुद फँस बैठा।"

"यह क्या पागलपन है..?" गरिमा बोली।

"क्या पागलपन है!—" कहते कहते बाबूजीने प्रवेश किया। अब तक बिहारी लौटा ही नहीं, यह कैसी बात है? आखिर उकताकर बाबूजी खुद ऊपर चढ़ आये हैं। गरिमाकी तरफ़ देखकर कहा—

"...यह पागलपन क्या...?"

"बाबूजी, बिहारीने ब्याह कर लिया है। वह कट्टो..."

बाबूजी चौंके, "क्या?"

"वह कट्टो लड़की, आपने सुना होगा...

बाबूजीके मुँहसे निकला—"बिहारी?"

बिहारीने अविचलित अकम्प स्वरमें कहा—"जी।"

बाबूजी क्षणेक गुम रहे। फिर क्या हो गया?—बोले—

"बहूको कब लाओगें घरमें?"

"बाबूजी, वह घर नहीं आयेगी, वहीं रहेगी।"

"क्या?" जोरसे झटककर बाबूजीने कहा।

"वह वहीं रहना चाहती है।"

"और तू?"

"अभी तो इम्तहान देकर घूमने जाऊँगा। आप फ़िकर न करें, फ़ेल अब-तक कभी न हूँगा। घूमनेमें दो साल लग जायँ,—शायद ज्यादे भी। लौटकर आपसे परामर्शके बाद, देखूँगा, क्या करूँगा।"

"और बहू?—नहीं, वह यहाँ रहेगी। मेरी बहू वहाँ रहेंगी, वैसे रहेगी, और यह रुपया यों भरा भरा सड़ेगा? नहीं वह यहाँ रहेगी, बिहारी।"

"बुला भेजिएगा। आये, तो आ जायगी।"

"मैं पहेली सुलझाना नहीं चाहता।—कैसा यह ब्याह है तेरा?"

"हमारा ब्याह हुआ है इसलिए कि हम दूसरा ब्याह न करेंगे। साथ रहे रहे, न रहे न रहे,—कुछ बात नहीं। क्योंकि हम हमेशा साथ हैं।"

"यह पागलपन खतम करो। जाना हो जाओ। पर यह पागलपन मैं नहीं सुनना चाहता। मैं तुम्हें किसी बातसे नहीं रोकूँगा। पर ऐसी दुनियासे परेकी

बातें मेरे सामने न किया करो।"

तब बाबूजीने घरके आँगनमें जाकर बिहारीकी माँसे पुकार कर कहा—

"सुना कुछ? बिहारीने व्याह कर लिया है। बहू वहीं गाँवमें रहेगी,—बिहारी लापता होगा। ऐसी बात तुमने सुनी है कभी?"

"व्याह हो गया—किसीको पता भी नहीं! और बहू वहाँ, और यह यहाँ भी नहीं वहाँ भी नहीं!!—यह कैसा किस्सा कह रहे हो तुम?"

"कैसा है, तो बिहारीको ही बुलाकर पूछ लेना।"

कहकर बाबूजी बैठकमें जाकर आजके अखबारमेंसे दुनियाकी असारता खोजने लगे। गरिमाकी बात, हठात्, भूल ही गये।

२९

व्याह हो गया है। बड़े घरकी बेटी,—खूब अँग्रेजी-पढ़ी बहू गाँव आई है। दुनियाँका आठवाँ आश्चर्य उठकर मानों गाँव आ गया है।

पर ठहरो, नई-नवेली बहूको देखनेकी उतावली न करो। औरतोंकी भीड़ उसे घेरे है उसे छँट जाने दो, और कट्टोको जरा छुट्टी पा लेने दो। उसके साथ-साथ अकेलेमें चलेंगे।

इधर कट्टोकी जान-पहचान नई बना लें। वह अब वैसी ही पेड़-वाली कट्टो बन गई है। कुछ आया था जिसके कारण वह लहँगा-ओढ़ना पहनकर कोनेमें दुबकी सिमटी बैठे रहनेकी बात सोचने लगी थी, लेकिन वह चला गया,—चलो अच्छा ही हुआ,—और अब फिर वह वैसी ही भागने-उछलने और चहचहाने लगी है।

जीजी कबकी आई हैं,—पर उसे फुर्सत नहीं निकल रही है। बात यह है कि वह इतनी जनियोंके बीचमें जायगी तो चुपचाप बैठे रहना पड़ेगा,—और यह उससे न होगा। वह तो जीजीसे मचलना चाहती है, अभी कुछ जीजीसे उलझे बिना उससे कैसे रहा जायगा? बाल भी तो उनके काढ़ूँगी, उनकी चीजें भी देखूँगी,—सब उनकी किताबें भी, गहने भी। इसीसे वह कुछ न कुछ धरा-सँभाल किये ही जा रही है।—पर ये औरतें भी कैसी हैं, जमके ही बैठ गई हैं, टलती ही नहीं!—अब कट्टो भीतर ही भीतर कुलबुलाते कुलबुलाते तंग हो गई है। बैठी हैं तो बैठी रहो,—यह तो अब जायगी ही।

लो, तैयार हो जाओ।

प्रौढ़ा और नवीना, मुखरा और मौना उज्जवला अपितु श्याकलकांता आदि विविध वखानकी स्त्रियाँ विभिन्न वर्णों और वर्णनोंके साज और सिंगार पहने, अचरजसे थोड़ा सम्मान-संभ्रम-पूर्ण अंतर छोड़े 'एक' को चारों तरफ़से घेरे बैठी हैं। वह एक वहू बनकर आई हुई गरिमा है। देखो तो, कैसा ओढ़ना ओढ़े बैठी है, और लहँगा सिमटाकर ऐसा कर लिया है कि दीखे ही नहीं। मानों इसे और कुछ पहनना आता ही नहीं, सदा यही पहिना की है, और सदा मानों यही कपड़े पहिने, यों ही बैठी रही है। गहने एक एक अंगपर झलमल-झलमल कर रहे हैं। आँखें सामने किसी अज्ञात बिन्दुके भीतर घुसनेको प्रयास कर रही हैं, थक जाती हैं तो वायें हाथके कंगनकी एक उठी हुई नोकपर आ ठहरती हैं। वहू इस तरह इतनी दृष्टियोंसे जकड़ी हुई बैठे बैठे थक गई है, चाहती है इनकी नजरें कुछ ढीली हों, कुछ बातचीत हो, जिससे उसके चारों ओर फैला हुआ यह विशिष्टताका परिवेष्टन टूटे और उसे आदमीकी तरह कुछ करने-धरनेका अवकाश मिले। पर ये सब आपसमें बोल सकती हैं, उससे नहीं बोल सकतीं,—न जाने यह कहीं अँग्रेजी बोल पड़े!—वे तो बस इसे देख सकती हैं।

वहू उठ सकती नहीं, और अव बैठी भी रह सकती नहीं। वह बड़ी व्यथा पा रही है। कितनी बार उस बिंदुसे हटकर कंगनेपर और कंगनेसे उस बिंदुपर लौट लौट जाकर उसकी दृष्टि थक चुकी है। तभी सुनाई दिया—

"जीजी!"

उठ पड़ी। देखा, जरूर वही है। अनायास कह उठी "कट्टो!" अनायास वह खिल गई; अनायास हाथ फैल गये,—मानों स्वागतके लिये; एकदम, सब कुछ बह गया; अनायास इस कट्टोको बैठानेके लिये मानों हृदय किवाड़ खोलकर सन्मान-सहित खड़ा हो गया।

कट्टो दौड़ी आई, उस आलिंगनमें बँध गई।

"जीजी!"

"कट्टो!"

जैसे दो सरिताएँ मिल गईं, दो लताएँ मिल गईं, दो कोमलताएँ मिल गईं।

स्त्रियोंने देखा कि यह क्या? कट्टो वाहर कभी नहीं गई, वहू यहाँ पहली बार आई है, फिर यह क्या?

वे क्या जानें कि दोनोंके हृदय,—एक ओरसे चाहे स्पर्द्धा और ईर्ष्यासे हो, और दूसरी ओरसे श्रद्धा और अर्चनासे बहुत पहलेसे एक-दूसरेसे परिचित हैं। और वे क्या जानें स्पर्द्धा और श्रद्धा, और ईर्ष्या और अर्चना एक ही भावनाके ओर और छोर हैं, ऋण और धन दो सिरे हैं। उन दोनों सिरोंके बीचमें रहने और बहनेवाला तत्त्व है आकर्षण।

३०

दोनों अकेली हैं।

"जीजी, मेरी बात उन्होंने कही थी ?"

"कही थी। व्याहकी भी कही थी।"

"वह तो हँसी बहुत करते हैं। हमेशा हँसी !—यह कोई ठीक बात है ?"

"अच्छा, उसकी ठीक बात नहीं हैं। फिर तू ही बता ठीक बात।"

"जीजी, कुछ नहीं। भला, ब्याह कैसा ? जीजी, जानती नहीं तुम, मैं तो विधवा हूँ। विधवाओंका भी ब्याह होता है ?—छिः"

"तुम तो एकदम ब्याहपर जैसे लानत भेजती हो !—फिर क्या बात है ?"

"कुछ बात भी हो जीजी !—बिहारी बाबू तो यों ही····"

"देख, कट्टो, छिपेगी तो ठीक नहीं। मैं फिर तेरी कुछ भी न हुई ? मैं तेरी जीजी नहीं हूँ, भला ? और जीजीसे तू अपनी बात न कहेगी ?"

"हमने प्रतिज्ञा की है, वह कुँआरे रहेंगे, मैं ऐसी ही रहूँगी। और हम दोनों अपनी बात नहीं सोचेंगे, दूसरोंकी सोचेंगे। मुझे तो सोचनेके लिये तुम हो, और तुम्हारे 'वे' हैं। जीजी, उन्होंने तो मुझे पढाया है। मैं भला क्या जानती थी, और वह न होते तो आज क्या मैं तुम्हें जान पाती ? बिहारी बाबूसे भी अपने आपमें ही सुखी नहीं रहा जाता। बिहारी बाबू तो दुनियामें विहारके लिए ही बने हैं। वह क्या एकके होने लायक हैं,—सबके हैं। मैंने यही देखकर उनके साथ प्रतिज्ञा बाँध ली। बस, यही बात है जीजी,—इसे बिहारी बाबू ब्याह कह लें या कुछ भी कह लें।"

"यह अद्‌भुत बात तुझे कैसे सूझी कट्टो ?"

"अद्‌भुत क्या है जीजी इसमें ? बिहारी बाबूको देखकर मुझे ऐसा लगा कि

उनकी आत्मा किसी एकका सहारा पाकर कल्याण-रूप होकर व्याप्त हो जाना चाहती हैं। और वह उस 'एक' को खोजते फिर रहे हैं। मैंनें अपनेसे पूछा, 'क्या मैं वह 'एक' हो सकती हूँ ?' मनने कहा, 'क्यों नहीं ?' जीजी, सो यह बात हिम्मत करके मैंने कह डाली····"

"तुमने यह आत्मा पढ़ना कहाँ सीखा ? देखती हूँ, तुम तो बड़ी होशियार हो!"

"जीजी, तुम तो ठट्ठा करती हो ! आत्मा क्या कोई सबकी पढ़ी जाती है? और क्या कोई सीखा जाता है ? बिहारी बाबू तो मुझसे ऐसे दीखे जैसे छापेके अक्षर, कोई साफ़ साफ़ एक एक पढ़ लें।"

"तो फिर यह ब्याह कैसे हुआ ? वह तो कहते थे, ब्याह हुआ है और तुमने उनपर जादू फेरा है।"

"जीजी, वह तो बात ऐसी ही ठट्ठेसे कहा करते हैं। हम कब चाहते हैं, लोग उसे ब्याह कहें, ब्याह समझें। हाँ, इतना है कि मैं उनके और वह मेरे जीवनसे मिल गये हैं।—हम बँध जो चुके हैं एक ही प्रतिज्ञामें। उनसे मेरा और मुझसे उनका जीवन बनेगा और पूर्ण होगा।.उनकी वजहसे मैं इकली भी अकेली न हूँगी, और हम एक दूसरेके होकर सबके होनेकी राह पा लेंगे। मैं उनके लिए मर जाऊँगी, ऐसे ही वह मेरे लिए मिट जायेंगे।······पर जीजी, तुम मुझे ऐसे देख रही हो जैसे नें बिल्कुल पगली हूँ। बिल्कुल पगली थोड़े ही हूँ। तुम्हारे जितना तो नहीं जानती। सो क्या उस बातपर तुम मुझे यों देखोगी। न न, मुझपर तुम बिगड़ नहीं पाओगी।···अच्छा, चलो अब जीजी, घर चलो हमारे। तुम रोटी तो बनाना क्या जानती होगी, क्या काम पड़ता होगा वहाँ तुम्हें ऐसा। पर तुम बैठी रहना, बताती जाना, मै बनाती रहूँगी। तुमसे कहा न होगा उन्होंने, आज तो तुम्हें मेरे ही यहाँ खाना खाना पड़ेगा।···हाँ, और भी तो बात है,—आशीर्वादकी।····आशीर्वाद दिया तुमने ?—अब यहाँ देना पड़ेगा।—पहले दे दोगी, तब रोटी मिलेगी।"

यह कट्टो ऐसी बात करती है कि कहींसे बचनेकी राह ही नहीं छोड़ती। सवाल भी करती है, और जवाब भी अपने ही आप दे देती है, जिससे 'नाहीं' करनेका मौक़ा नहीं रहता। गरिमा इसकी यही बात देख देखकर अचरज कर रही है। गरिमासे जो चाहे करवा लेती है, और हर बात में अपनी ही चलाती है,—पर ऐसे ढंगसे कि कुछ कहते नहीं बनता, बिल्कुल अखरता ही नहीं।

यह आशीर्वाद देना-दिवाना तो किसी शिष्टताके 'कोड' में उसने सीखा नहीं। न वह आशीर्वाद देनेंको अत्यन्त उत्सुक है। पर—

"जीजी, चुप क्यों हो ? देखो, ऐसे। मैं वैठती हूँ घुटनेके वल, फिर पैरोंमें पड़ूँगी, तुम मेरे सिरपर हाथ रख दोगी,—प्रेमसे जैसे माँ हो। फिर मैं उठ जाऊँगी, और मुझे गले लगा लेना। पर देखो, असली मनसे करना, नहीं तो मुझे फिर कसरत करनी पड़ेगी। जवतक ठीक नहीं होगा, तवतक छुट्टी नहीं दूँगी।"

कट्टो वात तो वहुत वड़ी वड़ी करती है, पर वोलती विल्कुल वच्ची-सी है। गरिमाने अपने लिए 'माँ' सुना, और उसका हृदय न जाने एक कैसे रससे भीना हो गया। अव तो सचमुच इस लड़कीको वह कंठसे लगा लेना चाहती है। इस लड़कीसे तनकर रहा नहीं जायगा,—वक्त वक्तपर वहुत पण्डिताईकी वात कर जाती है तो क्या ? उसके भीतर जो प्रसुप्त मातृत्व है, इस लड़कीने अपने लड़कपनकी मीठी वोलीसे छेड़कर उसे चञ्चल कर दिया है। तानसेनने अपने कण्ठके दर्दसे पत्थरोंको पिघला दिया, वच्चोंने अपने वचपनसे जाने कव कव क्रूर मनुष्यों और हिंस्र पशुओंको पिघला दिया, पत्तोंकी पुकारने न्याय-कठिन पर-मात्माको पिघला दिया,—तव कट्टोकी हठ-मचलने शिक्षा-कठिन गरिमाको पिघला दिया तो इतनी वड़ी वात क्या हुई ?—मातृत्वके गौरव और स्नेहसे कोमल गरिमाने कहा—"कट्टो, मैं···"

लेकिन तवतक तो वह गुटनेके वल वैठ गई थी। उसने माथा पैरोंमें लगाया,—पैर खींच लिये और गरिमा पानी पानी हो वह चली।

स्नेहार्द्र-कंपित वाणीसे गरिमानें कहा—

"हें हें, कट्टो,····"

पर कण्ठ वहुत भर रहा था,—हाथसे सिरको थपका और फिर दोनों हाथोंसे उठाकर आलिंगनमें वाँध लिया।

छूटते ही कट्टोने कहा—

"मेरी अच्छी जीजी, कैसी भली हो ! जीजी, चलो, मेरे घर नहीं चलोगी ?"

गरिमा वहुत वार नहीं रोई है। पर यह रोना तो वड़ा सुखप्रद मालूम हुआ। वह इससे हरी हो गई, जैसे वारिशसे झरी-धुली नई फुलवारी हो।

"कट्टो, तू मेरे साप नहीं रह सकेंगी ? मेरे साथ घर चली चलो तो वड़ा ही

अच्छा हो। ऐसी ही कट्टो बनकर रहना, सब तुझे प्यार करेंगे। तुझे कोई प्यार न करेगा तो किसे करेगा ?"

"मैं साथ चलूँगी ? कैसी अनिष्ट बात कहती हो जीजी ? इस गाँवको छोड़कर और कहीं रहूँग तो डालसे टूटे फूलकी तरह ज्यादे न रहूँगी। और वहाँ तुम्हारे घरमें मेरे जैसी गँवारिन क्या भली लगेगी ? जीजी, मेरी तो यही जगह है,—यही अम्माका जामन-वाला घर।···पर यह ऐसी बात क्या कह दी ? क्या उन्होंने कहा था ?"

कट्टो, इस स्थलपर क्यों छूती हो ? वह अभी अभी फूटकर बह चुका है, अभी तो दर्द देता है। पर मातृत्वकी इस हिलोरमें गरिमा इस हल्केसे दर्दको बेपीर झेल गई। बोली—

"उन्होंने तो नहीं कहा। वह क्यों कहते ? पर कहो, तो कह देखूँ ?"

"नहीं नहीं नहीं ··"

"अब तो ज़रूर कहूँगी, डरती क्यों हो ?"

"उन्होंने 'हाँ' कर भी दी, तब भी मैं नहीं जाऊँगी।"

"तब तो तू आप जायगी।" एकदम 'तू' से उसने ऐसी गहरी बात कह डाली।

कुछ देर और बात हुई। पर ऐसी सब बातें हम नहीं बता सकते। ऐसी जगह ज्यादे खोद-बीनकी जिज्ञासा भले आदमी नहीं किया करते। इससे मन मनमें जो चाहे समझ लीजिए, पर जोरसे कहिए मत और पूछिए मत।

उसके बाद कट्टोने अपनी जीजीसे अनुरोध किया—

"घर चलो। रोटी मैं बनाऊँगी तुम देखती रहना, बताती रहना।"

सो तो नहीं होगा। गरिमा क्या चुप बैठी रहेगी ? वह भी ज़रूर बनायगी। बनायगी नहीं तो मदद तो खूब ही ज़ोर-शोरसे देगी। लेकिन—

"लेकिन, मैं अभी आती हूँ,—मेरी क़सम। तू चल इतने···। मैं··· मैं ज़रा···"

बस बस बस, कट्टोसे ज़्यादे मत कहो। वह समझ गई है। वह चली जाती है, अभी भागी जा रही है। खूब बातें करो, तुम दोनोंके बीचमें अब वह कौन है ?

अब उसे एकदम अकेले भाग जानेकी बड़ी झटपट पड़ गई।—पर बातोंमें जीजी आना भूल न जायें ! बातें ही ठहरीं,—क्या अचरज है ! इससे चलते

चलते याद दिला गई—

"देखो, आन्ना। कहीं..! तुम्हें मेरी.."

"हाँ, जरूर, जरूर, जरूर।"

कहती रहो कितनी ही 'जरूर', कट्टो तो यह गई, वह गई, ? छोड़ गई है तुम्हें कि अव खुलकर वातें कर लो—। लेकिन झटपट उसके यहाँ भी जाना है।

नई वहुने (अव तक भी टोहमें लगी हुईं, सवसे नये मिनटकी और ज्यादेसे ज्यादे मिर्चवाली कोई खरी-खोटी सुनने और सुनानेके लिए सदा घात देखनेवाली प्रौढ़ाओंकी रायमें वड़ी वेहयाईके साथ) अपने नये वरको खोज निकाला—

"जी, यह कट्टो मेरे साथ चली जाय तो कैसा ?"

क्या ?—कट्टो ? फिर कट्टो ?—मानों कुछ ग़लत सुना गया है, इसलिए प्रश्न-सूचक दृष्टिसे देखा। "......?"

"क्यों, सुना नहीं ? या कट्टोको जानते नहीं ?"

"क्या ? कट्टो—? तव ?"

"वह मेरे साथ दिल्ली जाय तो कैसा ?"

"नहीं।" झटकेसे पुरा जोर निर्णयमें फेंककर कहा।

"नहीं ?"

"हाँ, नहीं। जहर रखना चाहो पास, रक्खो। पर मैं नहीं कहूँगा, मैं नहीं रक्खूँगा। कभी मरनेका लालच आ जाय तो खानेको पास ही तैयार रहे !—नहीं। कट्टोको तुम्हारे साथ या अपने साथ कभी रखनेको नही कहूँगा। समझीं।

समझी भी और नहीं भी समझी। लेकिन इस वारेमें और ज्यादे कुछ वढ़ना ठीक नहीं समझा।

फिर वादमें वहुत ही नियमित, दोनों ओरसे पावन्द, और अत्यन्त उचित रूपमें थोड़ा-सा परस्पर प्रेम-परिवर्तन हुआ। (नहीं, आप नहीं सुन पायेंगे,—धीरज न खोयें और मुँह न वनायें) जव पावन्दी, शिष्टता और औचित्यकी परिधि आ गई, तव विवाहके वादके प्रथम दिनका प्रेमालाप रोक रखना पड़ा और गरिमा कट्टोके घरके लिए चल दी।

३१

साग तो अब हुआ जाता है। रायता हो ही गया सब कुछ हो गया है, बस अब पूरी उतारनी....हैं! यह चून तो अभी निकला हीं नहीं है, परात तो यूँ ही पड़ी है!! उसनेगा, तब कहीं...., इतने कढ़ाई जल..यह सब सोचकर, साग-सनी कर्छीको झटसे छोड़, हड़बड़ाई उठ खड़ी हो गई। देखो न, यह जीजीके झंझटमें आटा रह ही गया—पर लो, अब सब हुआ जाता है। वह चलनेको हुई ही कि—

"क्यों क्यों?—क्या हुआ?"

कट्टोने हँसते-हँसते बताया—

"सब हुआ, आटा तो निकला ही नहीं। ब्याहके सामान तो हो गये—दूल्हा कहाँ है!"

"लो मैं लाई।"

"नहीं नहीं...."

"कहाँ है?"

"वह रहा मटकेमें।"

गरिमा परात लेकर आटा लेने गई। कट्टो अपने सागमें लग गई। साग चलाते चलाते—देखा कि यह क्या?

"जीजी, चून खिड़ा दिया!"

"—उठाये देती हूँ।"

"हैं हैं धरतीका चून!"

उठानेको हो ही रही थी कि वहीं छोड़ दिया। फिर कट्टोका ख्याल गया—

"जीजी, इतना चून नहीं, थोड़ा।"

एक एक मुट्ठी डालती जाती और पूछती जाती 'इतना?' आखिर घटते घटते ठीक परिमाणमें आया ही,—डरते डरते कितनी मुट्ठी कम की गईं, पता नहीं।

जीजी जब चलनेको हुई कि पता चला उसकी आस्मानी रङ्गकी बेलदार साड़ीका सामनेका हिस्सा सफ़ेद हो गया है, और कोहनी तक हाथ भी मानों भूरे पाउडरसे सफ़ेद कर लिये गये हैं।

"जीजी, यह क्या कर रही हो ? आज सबको हँसानेकी ठानी है या यह हाथका और साड़ी का रंग नहीं भाता ? "

"बोल बोल, और क्या करूँ ? "

"करो यह कि बैठो, और मुझे हुक्म दो । सबके अलग अलग काम होते हैं । कोई किसीका करे तो बड़ी गड़बड़ हो जाय । तुम्हें तो तुम्हारा काम ही सोभता है। चून-दालका और बासन-भाँडोंका काम तो तुम्हारा है नहीं जीजी। मेरा है, मुझे करने दो । और तुम्हारा जो देखनेका, बतानेका, करवानेका है, सो तुम करो । "

"नहीं-री,..मैं अच्छी लोई बनाती हूँ, पूरीकी।.."

रोज़ रोज़की बात तो कहती नहीं । रोज़ तो उससे हो भी नहीं सकेगा । लेकिन आज तो बग़ैर काम किये वह नहीं मानेगी । ज़रूर कुछ पूरियाँ,—और अपनी साड़ी और अपने हाथ खराब करेगी,—चाहे पसीना आये, आँखोंमें पानी आये, घी उछटकर हाथ जलादे, और चाहे कट्टोको कितनी ही अड़चन पैदा हो ! कट्टोका कहाँ भाग कि ऐसी अड़चन पैदा करनेवाली उसके यहाँ आई है ! वह मदद करनेके नामपर सिर्फ़ काम बढ़ा रही है, और कट्टोके अपने खानेके सामान ही की नहीं, इस गरिमाकी और गरिमाके सामानकी भी फ़िक्र करनी पड़ रही है,—पर चाहती है, रोज रोज ऐसा ही हो । कोई मिले तो उसे प्यार करने वाला, वह उसे सिंहासन पर बैठाकर चौबिसों घंटे उसकी चाकरी बजायेगी और इसीमें वह कृतार्थ होगी । आज वह कितनी खुश है, इसको बहुत कम लोग समझ सकते हैं ।

इसी तरह खाना आखिर बन गया है । कट्टोकी अम्माँ भी अब आ गई है । बहूकी लोरियाँ वह ले चुकी है । कैसी महारानी बहू है ! बड़-भागिनी हो पूतोंसे सुखी रहे, राज करे, आदि अपनी मातृहृदयकी उछाह-रससे भरी असीसें वह उसपर बरसा चुकी है,—कुछ हर्षके आँसू भी ।

वही माँ इस नौसिखुए हाथोंकी बेढब कारंवाईको देखकर बड़ी खुश हो रही है।

तब सत्यको बुलाकर जिमाया गया । गरिमाकी साड़ी कानके आगे तक खींच ली गई है । पर वह ज्यादे बोल नहीं रही है । सत्य भी ज्यादा बोला नहीं । माँने जो बात छेड़ी तो सत्यने उखड़ी ' हाँ हूँ से उसका स्वागत किया, इससे बात करनेका माँका उत्साह भी भंग हो गया है । कट्टो तो मानों अपनी कड़ाहीकी सम्हालमें एकदम व्यस्त है । उसे तो सत्यकी ओर आँख उठानेकी भी छुट्टी

नहीं मिल रही है । और यह कौन कह सकता है कि वह इस प्रकारकी छुट्टी नहीं चाहती । उसका मुँह मानो कामकी भीड़ने सी रक्खा है । उससे, इसलिए, एक भी शब्द नहीं निकला है । हाँ, काम वेधड़क चल रहा है । न सिर उघड़े-वे-उघड़ेकी पर्वाह है, न यह कि हाथ यहाँ तक खुले हैं, और न इस बातकी ही कि थालीमें पूरी ठीक जगह पड़ती है या नहीं, क्योंकि अक्सर ठीक उसी समय कढ़ाईके घोमें कुछ खास काम निकल आता है, और आँखें उस घीकी ओर ही रखनी पड़ती हैं ।

वृत्तांतके अध्यायका यह पृष्ठ, या कहें यह पैराग्राफ़, इन सब जमी हुई चुप्पियोंके कारण, इतना नीरस हो गया है कि हम उसे पाठकोंके सामने नहीं रखना चाहते । इसलिए—

❀ ❀ ❀

"जीजी बैठो न ।"

"तुम भी तो बैठो ।"

"मैं पीछे खाऊँगी । निपटाना भी तो है ।"

"निपटा लो तो फिर । मैं भी पीछे ही खाऊँगी ।"

"नहीं जीजी, यह कोई बात है ? तुम तो मिहमान हो, जीजी हो ।"

"अच्छी जीजी हूँ, और अच्छी मेहमान हूँ,—इतना तो काम लिया कि–"

"नहीं नहीं, मैंने तो यह परोस भी दी थाली—"

"परोस दी तो रक्खी रहने दो । ठंडी कांटेगी तो है नहीं ।"

कट्टो हार गई । और यह हारना कैसा अच्छा लगता है ! कट्टोने कहा—

"अच्छा तो लो, मैं भी अब निवटी । तुम्हें देर तक भूखा नही रक्खूँगी। पर तुमने फैलाने में मदद दी तो अब निवटानेमें भी तो . ."

"बोलो, बोलो,—"

तब मिलकर उठा-धराई की गई । कट्टोने आधा काम किया, आधा बताया कि ऐसे करो । इससे काममें कुछ शीघ्रता हुई हो सो बात नहीं, पर वह देर किसीको मालूम नहीं हुई,—और ऐसा लगा जैसे काम सचमुच जल्दी हो गया ।

तब खाना हुआ दोनों सहेलियोंका । उनहार-मनुहार, छीन-झपट, गुदगुदाहट और ज़बरदस्ती आदि आदि बहुत-से व्यंजन भी थालीके व्यंजनोंमें मिल गये । और इनके कारण भोजन बहुत स्वादिष्ट हो गया । वे कट्टोनें बनाये थे, इनके

वनानेमें ज्यादे श्रेय गरिमाका था। शहर दिल्लीमें वह नियमकी विधिनिषेधकी रेखाओंसे घिरकर कई कोणोंकी ऐसी ज्यामितिकी पिंड वन गई थी जो हिल-हिला नहीं सकती। यहाँ,—कट्टोके यहाँ आकर वह रेखाएं हट गईं। तब जो कुछ दवा हुआ, घुटा हुआ और घिरा-हुआ था, वह तनिक तीखे वेगसे उमड़ पड़ा। इसलिए इस एक थालीमें खाते वक्त उसने कट्टोके साथ ऐसा दंगा मचाया कि क्या कोई मचा सके।

सहेलियोंका यह काम हम नहीं देखेंगे, क्योंकि क्या ठीक, इस ऊधम दंगेमें धोती कहाँ बहक जाय, पल्ला कहाँ हो जाय, और हाथ न जाने कहाँ कहाँ पड़ें। इसलिए, अगर सभ्य हो तो आँख मींचकर लौट पड़ो। कहीं पता चल जाय और आयंदा वैसा ऊधम ही वंद हो जाय,—तव तो दुनियाकी भारी क्षति होगी;—हम सच कहते हैं।

३२

लेकिन दिन एक-से नहीं रहते। काल चला जाता है और चीजोंको नई-पुरानी कर जाता है। नईका काम है पुरानी हो जायँ, पुरानीका काम है मर जायँ। यह मरीं, फिर शायद किसी विशेष पद्धतिसे नई हो जाती हैं। वह विशेष विधि क्या है, सो हम क्या जानें? जिसे विद्वानोंने खोजा, मर गये पर नहीं पा गये; खोज रहे हैं, मर रहे हैं, पर नहीं पा रहे हैं;—उसीको हम क्या जानें? हमसे बहुत ज्यादे मेहनत नहीं होती, इस खोजने खोजनेमें ही, और पानेके लालचमें खोने खोनेमें ही हमसे जिन्दगी नहीं वितायी जायगी। हमने तो एक शब्दमें कह दिया 'परमात्मा', और मानों हमने पा लिया। हमारी छोटी-सी गर्ज तो पूरी हो गई। पर लोग हैं, जो खोजनेसे थकना ही नहीं चाहते। कहते हैं, हम पाकर ही छोड़ेंगे। हम उनको धन्यवाद देते हैं, हाथ जोड़ते हैं, बड़ी श्रद्धासे 'नास्तिक' कहते हैं, पर कहते हैं 'भाई, खूब खोजो, जितना वने उतना। पर विदासे एक दिन पहले समाधान नहीं मिल पाये तो हमारे साथ हो जाना और कहना 'परमात्मा।' मिल गया तो हम इसका जिम्मा लेते हैं कि जितने कोष मिलेंगे हम ज़बरदस्ती उनमेंसे 'परमात्मा' मिटा डालेंगे।

पर हम बहक गये। कट्टो और गरिमाका और हमारे वृत्तान्तका परमात्मासे

कोई विशेष निजी सम्बन्ध नहीं है। सिर्फ नये-पुरानेकी बात थी। सो बात यह है कि गाँवका स्वाद पुराना हो गया है; कट्टोसे मन अब वैसा नहीं खिचता, पहले-जैसा नहीं मिलता और नहीं बहलता। अब अखबारोंकी जरूरत अनुभव हो रही है,—किताबें भी तो नहीं हैं! उनसे अच्छी बोलती है, बहुत तनकर भी नहीं रहती, पर ये गाँवकी औरतें,—उँह उनसे दिल नहीं मिलाया जा सकता; ठीक बोलतीं नहीं, ठीक बैठतीं नहीं, ठीक बात भी नहीं समझतीं। —बोलो, बात भी तो नहीं समझतीं! फिर कैसे दो मिनट उनसे चर्चाको जी चाहे? वहाँ दिल्लीमें लता थी, जाह्नवी थी, कभी घर आ जाती थीं, होता तो वहीं चली जाती थी,—उनसे बात तो होती थी दुनियाकी और कुछ अक्लकी, यहाँ तो वह बात नहीं। दुनियाकी कुछ खबर नहीं रहती,—एक ही धँधा रोटी-चूल्हा और पति। और आपसकी 'तू और 'मैं'। वहाँ बाग़ थे, बगीचे थे, जी चाहा जब साफ़ हवा ले ली,—यहाँ हवा भी गंदगीमेंसे छनकर आती है, गाँवके चारों तरफ जहाँ-देखो घूरा, उसकी हवा,—क्या, वह, कार्बन, कार्बन आक्..खैर, कुछ तन्दुरुस्तीका खराब कर देगी। मैं, देखो, कैसी सूखी-सी..।

सारांश यह कि जब नई बात पुरानी बूढ़ी हो गई तो ये दोष सब उसके ऊपर सिकुड़नकी तरह, गिन-लो ऐंसे, फैल गये।

तब एक दिन यह चिट्ठी भी बाबूजीकी आ गई।

—"सत्य, गाँवमें तो काफी दिन हो गये। अब चाहो तो यहाँ आ जाओ। गिरी का मन पूरी तरह न लगा हो, तो तुम जानते ही हो, अचरजकी बात नहीं। वह एसी जगह रही नहीं। मुझे और कुछ नहीं, यही खयाल है की कहीं स्वास्थ्य-पर असर न पड़ जाय। स्वास्थ्य पहले, सब कुछ बादमें। लिखो, कब आ रहे हो ताकि गाड़ी भेज दी जाय। जल्दी ही आ जाओ। गरिमा अच्छी होगी। प्यार कह दो, कहो, मुझे चिट्ठी लिखना एकदम भूल न जाय। और सब अच्छे हैं।

तुम्हारा—
भगवद्दयाल

पुनः

चाहो तो आनेका तार दे देना—।

"भ० द०"

तबतक सत्य घर जानेके काफ़ी पक्षमें हो गया था। गरिमाके स्वास्थ्यकी ओरसे निश्चिन्त वह नहीं रहना चाहता। गरिमाने बताया है, गर्मी है, हवाकी तबदीली चाहिए। यहाँ का पानी ठीक नहीं, जी मचलाया-सा अनमना-सा रहता है। Aloofness की (एकाकी) ज़िंदगी बितानी पड़ती है, सोसायटी का अभाव है, दिमाग़को ख़ुराक और ताज़गी नहीं मिलती,—शायद इसीसे ऐसा है। गरिमाने यह भी कहा था, "पर मुझे कुछ नहीं। तुम जहाँ अच्छे, मैं भी वहाँ ही अच्छी। तुम्हें गाँव माफ़िक है तो ठीक है, मेरा क्या?"

यह अन्तका उलटा लगनेवाला तर्क ज़्यादेतर तुरन्त सिद्धि दिलवा देता है। यह बहुत कम चूकता है, और मर्मपर इस प्रकार बैठता है कि सौमें निन्यानवे हिस्से सिद्धि हुई ही रक्खी समझो। अश्रु-सिंचन-तर्ककी यह सूक्ष्म और हल्की पर्याय है, पर गला देने, पिघला देने और कहींका न छोड़नेमें उससे कहीं कारगर। सोचते तो थे ही जानेकी, इस चिट्ठीने मानो दर्वाज़ा खोल दिया, कहा, "आओ, आ जाओ।"

फिर चलनेके साज-सामान होने लगे, पुलिंदों और ट्रंकोंकी सँभाल और बाँध। नयी बहू जा रही है, यह ख़बर कुसलोने इससे, और उसने दूसरे उससे, और फिर तीसरे और चौथे..इस प्रकार 'इस उस' के पंखोंपर चढ़कर गाँव भरका चक्कर लगा आई। इसी चक्करमें मिली वह कट्टोको।

"जीजी जा रही हैं! वह भी जा रहे हैं!'

वह कई दिनोंसे नहीं गई तो क्या, और जीजी नहीं बोलती तो क्या, अब जाये बग़ैर उससे नहीं रहा जायगा।

पहुँची।—बहुत-सा सामान उठाना धरना है। कपड़े-लत्ते कुछ मैले हैं, सो अलग पोटलीमें बँधेंगे। और ये धोबीके यहाँसे नये मँगाये हैं,—सबके सब ट्रंकोंमें चिने जायँगे। यह भी तो ख्याल रक्खा जायगा कि कौन किसमें।—यह सब काम देखकर कट्टो चुप इन्तज़ार करने लगी है, जीजी वक्त पायें, देखें, तब बोलें। जो वह मैली धोती वहाँ लटक रही है, उसे देखने मे अचानक ही यह कट्टो दीख गई है। पर अभी तो और भी बहुत-से कपड़े हैं। निगाह उठानेकी कब फ़ुर्सत मिलेगी,—कुछ ठिकाना तो नहीं।

गरिमाके मनकी पूछते हो? वह अपनेको मन ही मन दोषी समझ रही है। देखकर भी नहीं देख रही है,—सो भी अनुभव कर रही है कि दोष हो रहा

है। पर दोषको मिटानेकी चेष्टा उसके जैसे स्वभाववालीको कठिन हो रही है। इसलिए, वह अपने मनको भुलानेके लिए, कि जैसे मन मान ले सचमुच कट्टो दीखी ही नहीं ,धोबी के कपड़ोंके ढेरमेंसे वह अत्यधिक व्यस्तता प्राप्त कर लेना चाहती है।

आखिर कट्टोने कहा, "जीजी ! .."

अब तो यह व्यर्थ भुलानेकी कोशिश, यह अभिनय, समाप्त करना ही पड़ेगा।

"कट्टो ! .."

"जीजी जा रही हो ?"

"हाँ।"

"आओगी ?—कब आओगी ?"

"सो तो वह जानें।"

"नहीं आओगी ?"

"क्या कह सकती हूँ, कट्टो ?"

"जीजी, आना चाहो, आ सकोगी। क्या और कुछ रोज़ नहीं रह सकतीं ?"

"कट्टो, मन नहीं लगता। कोई बोलनेवाला नहीं मिलता। ऐसी जगह मैं रही भी नहीं कभी।"

"पाँच-छः रोज़से मैं आई नहीं। क्या मालूम था, मेरी जीजीका मन नहीं लग रहा है। जीजी, न होता तुम्हीं बुला लेतीं। बुलानेपर सिरके बल आती। जीजी, कट्टोसे रूठोगी तो कट्टो क्या करेगी ?"

जीजी कुछ बोल नहीं सकी। कुछ 'नहीं-हाँ' कर दिया। कट्टोको छोटा बनना आता है, और जिसे छोटा बनना आता है, उसे प्यार पाना आता है। जब इस तरह पीछे पड़ जाती है तो कट्टोको प्यार न देना कठिन हो जाता है। सो ही गरिमाकी अवस्था है।

"जीजी, नाराज़ हुई हो तो बता दो। कुसूर हुआ हो तो बता दो, अब नहीं होगा। और देखो", उसनें आँख मिलाकर, और फिर पैर छूकर, हाथ जोड़ते हुए कहा, "देखो, जो हुआ सो माफ़ कर दो।....कर दिया न ? देखो जीजी, कट्टोकी बुरी बात मनमें ले जाओगी तो ठीक नहीं। तुम्हारे मनको भी चैन नहीं मिलेगा, मैं तो यहाँ मरती रहूँगी ही।"

गरिमाने दोनों हाथ उसके कंधेपर रक्खे।

"कपड़े ठी···" कहते हुए सत्य भीतर आये। देखकर ठिठक गये। वह अब कट्टोके सामने पड़ते गवड़ाते हैं। पदध्वनिपर मुड़कर कट्टोने देखा, सत्य हैं। उसने पैर छूकर, पूछा—

"तुम जा रहे हो?—जीजी फिर कब आयेंगी?"

"कह नहीं सकता।"

"बिल्कुल नहीं कह सकते?"

"कैसे कह सकता हूँ?"

"तो फिर कब मिलना हो?—क ोका कहा-सुना माफ़ कर देना। और कुछ हो तो लिखना। कट्टोको पढ़ाया, अब उससे कुछ सेवा नहीं लेना चाहते?"

मास्टर चुप।

"तो मैं जाती हूँ। जीजी, इनको कुछ हो जाय तो मुझे जरूर लिखना। और तुमसे जब बने यहाँ आना। घर तो तुम्हारा यहीं है अब। और तुम दोनों माफ़ कर देना। कट्टो बड़ी भूलें करती है, बड़ी मूरख लड़की है। और तुम दोनों सुखी रहना। और कट्टोकी भी कभी याद कर लेना, क्योंकि कट्टो तुम्हारी बहुत बहुत याद करेगी।"

कट्टो फिर एक बार दोनोंको नमस्कार करके और जीजीसे गले मिलकर चली गई।

सत्य अब जल्दी जल्दी किसी काममें नहीं लग जायेंगे तो रो पड़ेंगे, इससे झट झट कपड़े फैलाने और इकट्ठे करने लगे। कहा—

"जल्दी करो, जल्दी।"

गरिमाको आँसू छिपानेकी बहुत ज्यादे जरूरत नहीं है, इसलिए वह स्वतन्त्रतासे कपड़े भिगो रही है।

३२

गरिमा-सत्यका, और कट्टो-बिहारीका विवाह हो गया है। और बहुत कुछ काम हमारा खतम हो गया है। इक्कीसवीं सदीके अनुसार हम सन्तानके शौकीन नहीं हैं,—इसलिए उस बात तक कहनेके लिए ठहरेंगे नहीं।

सत्यने दिल्ली जाकर देखा, यह मकान ज्यादा खुला और अच्छा है। पत्थरका फ़र्श है, नल-बिजलीका आराम है। और भी सब सुविधाएँ-ही सुविधाएँ हैं। इसलिए बाबूजी कहते हैं तो वह दिल्ली ही रहेगा।

रहना अब दिल्लीमें ही होने लगा। बिहारीपर भरोसा नहीं है। बिहारी कच्चा आदमी नहीं है कि किसीकी खातिर टूट जाय,—बाबजी यह बहुत अच्छी तरह जानते हैं। इसी लिए सत्यको अपने पास बसाया है।

तो अब माँको भी गाँवसे बुला लिया जाय। माँ आईं तो, पर बाप-दादोंका मकान छोड़नेका सदमा साथ लेकर आईं, और थोड़े दिनों बाद यह घर भी और यह लोक भी छोड़ गईं। दो हफ्तेके अनन्तर गरिमाकी माँका भी देह छूट गया।

तब घरके भीतरका बोझ गरिमाके सिरपर आया। उसने काफ़ी अच्छी तरह निबाहा। पर निबाहनेमें नौकर अब काफ़ी लगते हैं। गरिमाने नौकरोंसे निबटनेका भी एक काफ़ी जटिल काम बढ़ा लिया है।

बाबूजी अब इधर ढीले हो चले हैं। बाहरकी दौड़-धूप सत्यके सिर आ पड़ी है। इस तरह सत्यके निर्बाध आदर्श-चिन्तनमें बाधा पड़ती है। वह, जो होता है, करता तो है, पर झींकते हुए, झिझकते हुए और शर्माते हुए।

अब बाबूजीने उसे समझाना शुरू किया है और गरिमाने टेढ़े ढङ्गसे लेना। आदर्शकी आराधनाका काम उसकी निगाहमें कितना ही बड़ा काम हो, दूसरोंको विश्वास कराना कठिन है। लोगोंकी निगाहमें वह सब-कुछ निठल्लेपनका बहाना है, अकर्मण्यताकी सफ़ाईका नाम है। निठल्लेपनसे दुनिया नाखुश रहती है, और फिर आदमी खुद भी अपनेसे नाखुश रहने लगता है।

गरिमा जब तब ऐसी चोटें करती कि भीतर ही भीतर झुलस रहते हैं, पर कहते कुछ नहीं बन सकता। घरका जो अधिकार है, कहा जा सकता है वह गरिमाके अनुग्रहका फल है। और गरिमा इस सत्यका प्रयोग खूब होशियारीसे और खूब निशानेंसे करना जानती है।

इधर बाबूजीने अदालतका थोड़ा-बहुत काम पहले ही लेना शुरू कर रक्खा था। अब ज्यादे ज्यादे लेने लगे। उधर ऊँच-नीच भी समझाते जाते थे। परिणाम यह हुआ कि एक रोज़ सत्यका नाम भी बाक़ायदा वकीलोंमें दर्ज हो गया।

धीरे धीरे ठाठ भी बढ़े, नखरे भी बढ़े और अधिकार-प्रयोग भी। जितनी

वकालत कम चलती थी, उतने ही ठाठकी ज़्यासा जरूरत थी, शायद व्यवसायकी नीतिके तौरपर। और जितनी ही वकालत कम चलती थी, उतना ही नखरे और अधिकार-प्रयोग तीखे होते जाते थे। मानो जो अदालतके खाली घंटोंमें, सूट-बूट-सज्जित अवस्थामें, आत्मदर्पके विचार वन्द हृदयमें उठते रहते हैं वे घरमें ढक्कन खुलते ही वदलेके साथ निकलते हैं।

विहारी इम्तहान देकर चला ही गया है। वह पास भी हो गया और पास हुएको भी दस महीने होने आ गये। पत्र तो उसके आते हैं, पर पूरा पता नहीं लिखा होता। वावूजी जानते हैं कि फ़िक्र और ढूँढ़से कुछ परिणाम न होगा, इससे चुप हैं।

वावूजी अव गरिमासे कभी कभी तङ्ग दीख आते हैं। गरिमाका भी ख्याल है कि वावूजी बुढ़ाकर चिड़-चिड़े वन गये हैं। इसलिए अव वह उनकी वातको उतनी पर्वाहसे नहीं सुन सकती।

अव घर उसके हाथमें है। उस घरकी एक वात है ?—दस वातें हैं। वावूजीको वे सव कैसे समझाई जा सकती हैं ? वावूजी यह सव तो देखते नहीं, यों ही गरिमा वेचारीसे उलझ पड़ते हैं। उसे भी लाचार कुछ सीधी-सी कह देनी पड़ती हैं।

ऐसी अवस्थामें वह विहारी कहाँ चला गया है ? फिर फिर कर विचारे वापको वही याद आता है। अव वह ज़रा अस्वस्थ रहते हैं। खाँसी उठती है, वदन दर्द करता रहता है। सत्य नियमसे वँधे दो वक्त आता है। अव कामकाजी आदमी है, वकील है, वहुत तो फुर्सत पाता नहीं। दस धन्धे हैं, सौ झंझटें हैं। वावूजी तो वीमार हैं,—ज़मीन-जायदाद लेन-देनका भी सव काम उसीको भुगतःना पड़ता है। लेकिन वावूजी चाहते हैं दस वार आये, सो कैसे आये ? जव फुर्सत निकालकर दोसे ज़्यादे वार आता है तो इशारे इशारेमें यह सव वात वावूजीको समझाता है। वावूजी आँख मीच लेते हैं,—मानों समझ गये हों, पर समझते नहीं, फिर वही उम्मीद करने लगते हैं।

हाय !—विहारी कहाँ है ? वेचारा वाप उसीकी याद करता है। उसका यह सफ़ेद पका सिर वहुत कुछ जानता है, पर लाचार है। जानता है, विहारी था जो सैंकिड-भर न छोड़ता उसे,—चाहे वकालत जाती चूल्हेमें। और वकालत नहीं जाती चूल्हेमें, जैसी कि अव सत्य उसे भेज रहा है। लेकिन बुड्ढा लाचार है।

बिहारी—?

तभी दुर्घटना हो गई। मोटर टकरा गई, वृद्धके चोट आई, सत्य बच गया। सत्य श्वसुरको अस्पताल पहुँचाते ही जरा घर आ गया है। पीछे ही उसके बिहारी अस्पताल पहुँच गया।

वृद्धने पहिचान लिया, "आ गया बेटा ?"

"आ गया बाबूजी।—बस अब अच्छे हुए, घर चलेंगे।"

"बिहारी, नहीं, दर्द बहुत है। दिन हो गये पूरे।"

"नहीं नहीं बाबूजी, अभी मैं कट्टोको दिखाऊँगा। और वह आपकी सेवा करेगी और आप अच्छे हो जायेंगे। कट्टो और कुछ जानती नहीं सिवा सेवा करनेके। आपको वह चंगा करके छोड़ेगी।"

"कहाँ है, कहाँ है वह बेटा ?"

"अब शामतक पहुँची। तार दे दिया है।"

"मैं उसे नहीं जानता। तुझे जानता हूँ। तेरी पसंद कभी ग़लत नहीं हो सकती।"

"बाबूजी, वह देवी है।"

"बिहारी, दर्द बहुत है। बोलो मत बेटा, बोलनेसे.." बात आगे पूरी नहीं हो पाई।

कट्टो आई। कट्टोने सेवा की, आशीर्वाद पाया, सफ़ेद पलकोंके नीचे रोती-हुई आँखोंके कुछ बहुत मीठे आँसू पाये। और पिता मर गये।

मोटर कमबख्त रास्तेमें खराब हो गई थी, भीड़में धीरेसे चली, यह और वह!—"हाय!" सत्यने कहा, "मैं आखिरी वक्त पिताके पास न रह सका!"

३४

अगले रोज़ यह चिट्ठी सत्यको मि०······एडवोकेटका चपरासी दे गया-

"बेटा सत्य, मेरे दो बेटे थे, बिहारी और सत्य। तुम्हें मैंने गरिमा दी, जिसपर मैंने सबसे ज़्यादे प्यार वारा और जिसको मैंने सबसे क़ीमती चीज़

समझा । अब बाक़ी चीज़ बिहारीको दे जाता हूँ । मि०······एडवोकेटके यहाँ······बैंकके 'करण्ट एकाउण्ट' के अतिरिक्त मेरी सम्पत्तिका सब ब्योरा है । वह ठीक कर लेंगे । बिहारीको शायद इसकी ज़रूरत पड़े । तुम तो लायक़ हो, कमा लोगे और दुनियामें अपनी जगह बना लोगे । पर बिहारीको तो उड़ानेके लिए शायद ये भी काफ़ी न हों ।

तुम्हारा—भगवद्दयाल ।"

पढ़कर सत्यको गुस्सा हुआ,—बदल गये । वह अब इस मकानमें भी नहीं रह सकते । बिहारीके दानपर वह नहीं रहेंगे,—एक मिनट भी नहीं रहेंगे । ये सब विचार और उनका कारण समझाकर उन्होंने गरिमासे कह दिया । गरिमा मकान छोड़नेको राज़ी नहीं हुई । मत हो, पर सत्यका आत्म-सम्मान इतना सस्ता नहीं है । तत्क्षण कुछ अपना सामान लेकर और नक़द सौ रुपये लेकर वह चला गया । एक छोटा-सा घर किराये लिया, और वहाँ रहने लगा । मि०...... एडवोकेटको लिख दिया—

"मि०......,एडवोकेट,

"मैंने मृत मि० भगवद्दयालकी जायदाद परसे क़ब्ज़ा छोड़ दिया है । आप जब चाहें मुझे आफिस बुलाकर सब समझ सकते हैं । उनकी लड़की,—मेरी स्त्री अभी उसी मकानमें है । उसके लिए मैं ज़िम्मेदार नहीं हूँ ।

आपका

......

बिहारीको पता चला । बिहारीसे कट्टोको ।

पता आखिर मकानका लगाया ही । एक खाटपर बैठा सत्य सोचमें है । जीवनपर दृष्टि डाल रहा है और उसे समझनेकी चेष्टा कर रहा है । उस सारे जीवनमें कोई रीढ़ नहीं दिखाई देती ।

आहट हुई, आँखें उठीं, देखा, कट्टो है । जहाँ गरिमा नहीं आई,—इंकार कर दिया, जहाँ अभी कोई भी आस बँधानेवाला नहीं, वहाँ कट्टो !—कट्टो, जिसको लांछित और अपमानित किया है ! वही कट्टो !—क्या उपहास करने आई है ?

"तुम घर क्यों छोड़ आये ?"

"वह मेरा घर नहीं था ।"

"यह कैसी बात कहते हो ?"

"वह बिहारीका है ।"

"वह क्या पराये हैं ?"

"हाँ पराये हैं ।"

"हें हें, यह न कहो ।"

"वह घर-भर मेरा पराया है ।"

"हें, यह क्या कहते हो ? खबरदार, जो ऐसा कहा ! मेरी जीजीका तुम–"

"देखी तुम्हारी ज़ीजी..।"

तब उसने गिरकर पैर पकड़ लिए—

"मेरी जीजीको तुम कुछ नहीं कह पाओगे । क्या मैं तुम्हारी नहीं हूँ ?"

"नहीं, कोई नहीं हो । मैंने अपने हाथसे तोड़कर तुम्हें दूर फ़ेंक दिया, और उस.."

"वस वस, मेरी खातिर वस । मैं तुमसे कहती हूँ, उन्होंने घरसे न आकर गलती नहीं की । तुम्हीं क्यों चले आये ?"

"क्या मैं वेहया वनकर रहता ?"

"मेरी प्रार्थना मानों, चलो । हाथ जोड़ती हूँ ।"

"यह नहीं कर सकूँगा, कट्टो । माफ़ करना ।"

"नहीं ?"

"नहीं ।"

"नहीं कर सकोगे ?"

"और सव कर सकूँगा । यह नहीं ।"

"और सव ?"

"और सब,—हाँ । यह नहीं ।"

"अपनी वातको याद रखना ।" कहकर उसने चरण छुए और वह चली गई ।

अगले रोज आई, चालीस हज़ारके नक़द नोट सामने किये ।

"न न न ।"

"बोलो नहीं, कह चुके हो ।"

"कट्टो ! . ."

"देखो, तुम जवान हार चके हो ।"

"कट्टो मुझे नरकमें मत घसीटो ।"

"हें, यह क्या अशुभ लाते हो मुँहपर !"

उन्हें रुपयेकी ज़रूरत थी । वह उनकी आदतमें पड़ गये थे । यही कमी थी जिसने 'न न न' को कम करते करते आखिर अनमने मनसे लेनेंको बाध्य कर दिया । अब उनकी पैरोंमें पड़नेकी बारी आई । जो तना रहा, उसे रुपयोंने झुकाया । सत्य कट्टोके पैर छूनेको बढ़ा—

असह्य त्रासके भावसे झट पैर पीछे खींचकर वह बोली—हाथ जोड़ती हूँ, मुझे लज्जित न करो ।

"कट्टो ?"

"एक अच्छा-सा मकान लो । मेरी जीजी वहाँ रहेंगी, यहाँ कैसे रहतीं ?"

सत्य कुछ देर बेसुध-सा सुनता रहा । फिर हठात् स्वस्थ बनकर बोला—

"तुम्हारे कहनेसे सब करूँगा, नहीं तो··"

मुंहपर उँगली रखकर कट्टोने कहा—

"चुप !"

सत्य चुप ।

"जीजीको मेरी कुछ मत कहना ।—कहो ।"

"कुछ नहीं कहूँगा ।"

तब फिर कट्टो सत्यको पानी पानी हुआ छोड़कर चली ग ।

३८

"अब ?"

कट्टोने बिहारीसे पूछा—

"अब ?"

"अब हमारा यज्ञ आरंभ होता है ।"

"मैं क्या करूँ ?"

"गाँव जाओ। बच्चियोंको पढ़ाना, उसीसे गुज़ारा चलाना।"

"तुम?"

"मैं भी गाँव जाकर किसान बनता हूँ।"

"उस,—मेरे गाँवमें....?"

"नहीं। वही—दूर, फिर भी पास। अलग, तो भी एक। कहीं दूर गाँवमें जाऊँगा।"

स्वर हठात् बदल गया, मानों उसमें कुछ कसक आ मिली। जिज्ञासा की—

"यह रुपया!"

"इसका उपयोग कुछ समझमें नहीं आता।"

"इतने पर्यटनसे इसका उपयोग नहीं समझ आया?"

"नहीं। भिखारियोंको बाँटूँ, वह बढ़ते हैं। किसानोंको दूँ, वह इसपर आसरा डालनेकी आदतमें पड़ जाते हैं। जिसे देता हूँ, वही उसके चस्केमें पड़ जाता है, और फिर परिश्रमसे कटता और जी चुराता है। उद्योग चलाऊँ तो और रोग पीछे पड़ जाते हैं,—मशीनका और केन्द्रित सम्पत्ति और केन्द्रित व्यवसायका। पैदा करो, और फिर खपाओ। जहाँ श्रम केन्द्रित हो गया, वहाँ श्रमका मूल्य और श्रमकी अस्लियत घट गई, और पैदायश बढ़ानेकी फ़िक्र हो गई। उसके लिए फिर बलात् खपत बढ़ानेको तरकीबें सोचनी पड़ती हैं। यह अपनी अपनी खातिर पैदायश और खपत बढ़ानेकी प्रवृत्ति मेरे ख्यालमें बड़ी गड़बड़ है। मेरे ख्यालमें यह पैसा ही गड़बड़ है। पैसेने परिश्रमका सम्मान नष्ट कर दिया और उसे किरायेकी चीज़ बना दिया।....

"फिर?"

"फिर क्या? जिसका दाँव लगे मेरी सम्पत्ति लूट ले जाय। मेरी है वह किस बातकी? मैंने वह कब कमाई है? मैं तो कहता हूँ वकील लुटेरे जो चाहें मेरा मकान ले लें, जो चाहें नक़दी ले लें। मेरे पास जो भी पहले दस्तख़त कराने आयगा, उसीको दस्तखत दे दूँगा। सोचूँगा, बला टली। मेरी किसानीमें यह जायदाद और पैसा भी तो आफ़त ही डालेंगे। फिर क्या मुझे किसानी सूझगी? या तो आसाइश सूझेगी, नहीं तो बहुत हुआ, लेक्चर देना सूझेगा। इस सबसे कुछ भला नहीं होता। इससे छोड़ो पैसेका ख्याल। तुम अपनी बच्ची पढ़ानेकी बात सोचो, और मैं अपने हल और बैलोंकी। क्यों?"

"हाँ-आँ"

"तो ?"

"तो हम अलहदा होते हैं ?"

"हाँ।"

"प्रणाम।"

बिहारीने दोनों जुड़े हाथ थामकर झुके मस्तकपर चुंबन लिया। कट्टोने प्रणत भावसे उसे स्वीकार किया। और दोनों फिर अलग अलग राह चल दिये।—न जाने कब मिलनेके लिए !

स्पर्द्धा

१

वर्जिलोंके जीमें एक बात उठी है—शायद बहुत दिनोंसे उठ रही है। इस समय मित्रसे वह बात कहे बिना उससे रहा नहीं जा रहा है। इसीसे उसने पूछा—

'तुम क्या बनना चाहते हो, गिडिटो ?'

उत्तरमें गिडिटोने पूछा—

'और तुम ?'

उसके मनमें जो आकांक्षा संचित हो रही है, अब वह वाणीमें फूट ही जायगी। कहा—

'मैं ?—मैं नेपोलियन बनना चाहता हूँ।'

'नेपोलियन ! एकदम ?'

'हाँ'

'क्यों ?'

'नेपोलियनका जीवन मुझे बहुत प्यारा लगता है। कहाँ वह खाकमेंसे उठा, कहाँ आसमानके सिरपर चढ़ गया और कैसी सेंट हेलेनाकी सूनी-सी जगह मर गया ! वह एक शख्स था, जो अरमान लेकर नहीं मरा। जी की सारी हसरत उसने निकाल ली। राजमुकुटोंको लातसे उछालनेके बाद चौथाई सदी तक दुनिया को थर्रा रखनेके बाद, क्या चिन्ता थी, वह कहाँ मरता है ! —जेलमें मरता है या अकेला मरता है। मनुष्योंमें वह सम्राट् था। छोटा-सा आदमी था; पर कितना विराट् था !'

'ठीक ! तो 'तुम नेंपोलियन बनोगे ? क्या और कोई नहीं है, जो बिना अरमान मरा हो ?'

'तुम्हारा मतलब बुद्ध और ईसासे है ? मैं मानता हूँ, वे अरमानोंको साथ लेकर नहीं मरे; पर वे अरमान लेकर पैदा भी कहाँ हुए थे ।'

'तो क्या यह कुछ श्रेयकी बात नहीं है ? आरंभसे ही अपनी हविसको नष्ट कर रखना, क्या हर एकका काम है ?'

'मुझे तो इसमें कुछ भी बहादुरी नहीं दीखती। क्या थोड़ी-बहुत हम सबको ही अपनी आकांक्षाओं पर मिट्टी नहीं डालनी पड़ती ?'

'तो तुम्हें निश्चय है, इसमें तारीफ़की बात नहीं है ?'

'तारीफ़की बात क्या है,—मुझे तो नहीं दीखती। तारीफ़की बात तो इसमें है कि अपनी आकांक्षाओंको उन्मुक्त कर दिया जाय, उन्हें असंभव तक पहुँचने दिया जाय और फिर उसी असंभवको संभव कर दिखाया जाय। अपने सब अरमानोंको भाग्यके मुँह पर पूरा करके दिखाकर, एक विराट् शक्तिके रूपको दुनियाँकी चकाचौंधके सामने स्तूपाकार—पर्वताकार—खड़ा करके, फिर उसे ठोकर मारकर, व्यक्ति एक विजन कोठरीमें जीवनकी शेष घड़ियाँ निरपेक्ष निष्कांक्षी, कृतकृत्य होकर चुपचाप बिता दे और फिर मिट जाय,—मेरे निकट यह तारीफ़की और यही आदर्शकी बात है।'

'लेकिन फिर भी दुनियाँ बुद्ध की और ईसा की ज्यादा ऋणी है। नेपोलियन तो बीती वस्तु बन गया। वह आज हमारे लिए पढ़-पढ़कर स्तंभित होने भर के लिए हैं; लेकिन ये महापुरुष तो दुनियाँमें जीवित और अमर शक्तियाँ हैं....

'जीवित और अमर शक्तियाँ नहीं हैं,—जीवित और अमर अशक्तियाँ हैं। व्यक्तिके जीवनमें क्या तुम रोज़ नहीं देखते कि ये नाम उसे सशक्त तो क्या उल्टे अशक्त बना डालते हैं। यदि कभी इनके व्यक्तित्व शक्ति बनते है तो, इतिहास इस बात का साक्षी है। इससे घातक, विध्वंसिनी और आत्म-संहारक शक्ति कोई नहीं होती।..लेकिन तुम कहते क्या हो? नेपोलियन पर जितना साहित्य निकला है, उतना और किसी एक व्यक्ति पर न निकला है,—न निकलेगा। न तुम्हारे बुद्ध पर, न ईसा पर।'

'मानता हूँ। और शायद तुम्हें मना नहीं सकता। तो तुम नेपोलियन बनोगे ?'

'जी में तो है। प्रार्थना भी है। लेकिन बननेका मार्ग अभी नहीं सूझता।

फ्रांसमें जैसी क्रांति मची, वैसी जब यहाँ भी मचे ? वैसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हों; मुझे भी वैसे ही पक्के और साहसी आदमी मिलें,—तब तो ! पर, क्या यह सब कुछ मिलेगा ? मिले, तो मैं दिखा दूँ, कैसे नेपोलियन बना जाता है ।'

'मुझे इसमें कुछ भी आश्चर्य न होगा; पर यार, एकदम सम्राट् बन गये तो, देखो, हमारी भी याद रखना । हमें भी कुछ बना-वना लेना ।'—हँसकर गिडिटो ने कहा ।

हँसकर ही बेंज़िलोने जवाब दिया'—हाँ-हाँ, ज़रूर ।'

गिडिटोने फिर जैसे पक्का वादा लेकर ही छोड़ा । मानों कल ही उसे नेपोलियनके बेंज़िलो-संस्करणसे अपना प्रार्थना-पत्र स्वीकार कराना होगा ।

इसपर बेंज़िलोंने सोचा—'कैसा बेचारा, गऊ आदमी है । सदा चुप-चुप अच्छा-अच्छा रहता है । और चाहता है, इस चुप्पी और इस छोटी गठरी-सी भलमनसीके ही इनाममें जब सम्राट् बनूँ, तो इसे भी कुछ बना लूँ । बेचारा है । जानता है, भलाई भी कुछ चीज़ है; जब कि यह जानता ही नहीं कि शक्ति ही सब कुछ है ।'

इधर गिडिटोने सोचा—'दुर्भाग्य है कि परिस्थिति, आदमी, क्रांति, मार्ग, अवसर और कुछ भी इस दुनियाँमें बना-बनाया नहीं मिलता । सभी-कुछ बनाना होता है । कैसा दुर्भाग्य है जगत्का कि केवल प्रकृति-नियममें इस ज़रा-सी भूलके कारण दुनियाँको बेंज़ी नेपोलियन बनकर न दिखा सकेगा ! मैं सचमुच विश्वास करता हूँ—अगर सब कुछ तैयार किया-कराया मिलता तो बेंज़ी अवश्य सम्राट् बन सकता था । इतनी क्षमता उसमें है,—पर अब···?'

२

गिडिटो और बेंज़िलो दोनों कालेजमें पढ़ते हैं । दोनों कार्बोनारीके* सदस्य हैं । समितिमें दोनोंका क्या-क्या स्थान है,—एक दूसरा नहीं जानता । गिडिटो समितिकी सबसे ऊँची तीन आदमियोंकी नायक-गोष्ठीका भी सदस्य है । समितिके

*—'कार्बोनार' इटैलियन शब्द है, जिसका अर्थ 'पत्थरका कोयला जलानेवाला' होता है । उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भिक भागमें इस नामसे इटली और फ्रांसमें अनेक राजनैतिक गुप्त समितियाँ बनी थीं, जिनका प्रभाव उस समय बहुत बढ़ गया था ।

और सदस्य इस गोष्ठीको नहीं जानते। बस उसके हुक्मनामोंसे उन्हें काम पड़ता है, व्यक्तियोंसे नहीं। इधर वेंज़िलो समितिके भीतर ही अपने लोगोंका गुपचुप एक अलग गुट बना बैठा है। अधिकारियोंको,—नायकगोष्ठीको—उसका पता नहीं है; पर यह गुट भीतर-ही-भीतर प्रबल होता जा रहा है।

दोनों गहरे मित्र हैं। पर गहराईमें बहुत नीचे उतरकर जैसे उन दोनोंमें विच्छेद हो गया है। वे अपनेको एक दूसरेमें खो नहीं सके हैं,—और दोनों ही यह बात जानते हैं। दोनोंके ही व्यक्तित्वमें, हृदयमें और मस्तिष्कमें एक एक कोना है, जो दूसरेके लिए अगम्य है। दोनों ही उस कोनेके द्वार पर टक्करें मारते हैं, पर प्रवेश नहीं कर पाते।

इन दोनों मित्रोंमें एक और सम्बन्ध है। उम्रमें दोनों लगभग बराबर हैं; पर गिडिटो जैसे बेंज़िलोके लिए अपनेको ज़िम्मेदार समझता है। बेंज़िलो समितिका आग भरा सदस्य है। गिडिटो, जिसमें आग-वाग कुछ नहीं दीखती, इसका ध्यान रखता है कि कहीं उसका मित्र खुद ही अपनी आगमें न पड़ जाय! वह मानो मित्रका अभिभावक बन गया है। उसके खानें-पीने, पहिरने-ओढ़नेकी आवश्यकताओंको देखते और पूरी करते रहना उसने अपना दायित्व बना लिया है। बेंज़िलोको खुद जैसे अपनी खबर रखनी ही नहीं चाहिए। वेंज़िलो मित्रकी इन सेवाओंको सहज स्वीकार कर लेता है। उसे मानों अपने मित्रके अहसानोंका पता भी नहीं लगने पाता। वह मित्रके भोलेपन पर थोड़ी दया करता है। इधर गिडिटो अपनें वयस्क मित्रकी लापरवाहियोंको देखकर खुश होता और थोड़ा चिन्तित भी होता है।

दोनों क्रांतिवादी हैं; पर बेंज़िलो जैसे क्रांतिका तर्क है। तर्ककी ही तरह वह सीधा जाता है, और तर्कके समान टक्कर लेना और तोड़-फोड़ करना ही उसका काम है। और जैसे तर्क परिणामके भले-बुरेकी चिंता नहीं करता, जैसे तर्क केवल अपनी गति और दिशासे ताल्लुक़ रखता है, वैसे ही वेंजिलो है।

लेकिन गिडिटो जैसे क्रांतिकी फ़िलासफ़ी है। फ़िलासफ़ीकी तरह वह सोच-विचार कर चारों तरफ़ देख-समझकर चलता है। फ़िलासफ़ीकी तरह वह पूर्ण है, उसीकी तरह गंभीर। क्रांतिमें अशान्ति रह सकती है, उसके परिणाममें भी हिंसा रह सकती है,—पर उसकी फ़िलासफ़ीमें शांति ही शांति है। हिंसासे फ़िलासफ़ी डरती नहीं है, उसके निकट वह खुद शांतिका साधन बन जाती है।

वैसे ही गिडिटो खूनसे भय नहीं खाता, पर लहूकी नदियाँ देखकर भी उसकी शांतिके स्वप्न भंग नहीं होते।

लेकिन फ़िलासफ़ी तर्कका पोषण करती है। तर्क जैसे उसका उच्छृंखल हठी बालक है।

वेंज़िलों नेपोलियन बनना चाहता है। गिडिटो, गिडिटो ही बना रहना चाहता है। उसने अपना आदर्श किसी ऐतिहासिक पुरुषमें बंद नहीं किया है। वह अपना आदर्श अपने ही भीतर गढ़ता रहता है, और अपनेको उसके अनुरूप गढ़ता रहता है। वह गिडिटो ही बनकर अपने जीवनकी सार्थकता ढूँढ़ेगा। नेपोलियनके नामकी प्रभा उधार लेकर वह अपने व्यक्तित्वको सबल, सार्थक और सम्पूर्ण बना सकेगा, ऐसा उसका विश्वास नहीं है।

२

छोटा-सा कमरा है। बीचोबीच अनगढ़ मेज़ है। दर्वाज़ेकी ओर मुँह किये हुए मेज़के किनारे एक ऊँची कुर्सी है। तीन तरफ़ तीन और साधारण कुर्सियाँ हैं।

एक तरफ़ इटलीका बड़ा नक़्शा टँगा है। आलेमें कुछ बोतल और गिलास रक्खे हैं। एक कोनेमें एक खाली स्टूल है। और कुछ नहीं है। कमरा तीसरी मंज़िल पर है।

केवल तीन व्यक्ति बैठे हैं—गिडिटो, एंटिनो, लारेंज़ो।

ला०—गिडिटो, अपना आसन स्वीकार करें।

एंटिनो चुप रहा। गिडिटो चुपचाप उस ऊँची कुर्सी पर आ बैठा।

सबने जेबसे अपनी-अपनी नोटबुक निकालीं।

गि०—एलबर्ट पाँच दिन पहले हममें था; आज वह पीडमोंटकी गद्दी पर है। उसके सिर पर ताज रखते ही हमारे दो खास आदमी गिरफ्तार किए गए हैं। सोचना होगा कि हमें अब अपनी प्रगति क्या रखनी है।

एं०—वह भगोड़ा है। उसकी वही सज़ा होनी चाहिए।

ला०—सज़ा बोलनेसे कुछ नहीं होता। सज़ा पूरी नहीं की जा सकती।

एं०—क्यों?

ला०—वह हमसे आगाह है। फिर सारी फौज और पुलिस उसकी पुश्त पर है।

एं०—फौज़ और पुलिस हमारे मार्गसे हमें हटा सकती है तो हमें मर जाना चाहिए।

ला०—मस्लहत भी कोई चीज़ है।

एं०—कमज़ोरी है!

गिंडिटोने तब कहा—सम्भव है किसीकी समझमें अपने इटैलियन भाईको मारना ठीक हो; पर इस वारेमें जल्दी नहीं करनी होगी। हम पीडमोंटके संरक्षणमें इटलीका ऐक्य सम्पन्न करना चाहते थे। आज हम टुकड़ों-टुकड़ोंमें बँटे हुए हैं। उन टुकड़ोंकी शक्ति आपसमें ही क्षीण हो जाती है; इसी लिये आस्ट्रियनके लिये हमारी देशभूमि रौंदना सम्भव है। हमारी लड़ाई आस्ट्रियनके खिलाफ है और इस लिये पहला काम हमारा इटलीको एक राष्ट्र, एक आवाज और एक शक्ति बना देना है। यह काम पीडमोंटकी गद्दीको तहस-नहस कर डालनेसे नहीं होगा। उसको ज्यादासे-ज्यादा मज़बूत, हाँ, उदार बनानेसे होगा। एलबर्ट, हो सकता है, हमारा शत्रु हो, पर उस-जितना भी उदार राजा मिलना असम्भव है। हम उसे मार नहीं सकते। उसकी सहायता हमें करनी होगी, और अपने लिए भी प्राप्त करनी होगी, क्योंकि हमें अपनी शत्रुता-मित्रता नहीं देखनी, देशका हित देखना है।

एं०—किसी राजाके नीचे इटलीका ऐक्य सम्पन्न करनेकी इच्छा दुःस्वप्न मात्र है। हम राज-सत्ता नहीं चाहते। हम उसे कभी स्वीकार नहीं कर सकते। हम प्रजा-सत्ता चाहते हैं। राज-सत्ताके इतने कड़वे अनुभवके बाद हम यह कभी सम्भव नहीं समझ सकते कि उससे प्रजा-सत्ता कायम करनेमें मदद मिलेगी,—वैसे ही जैसे आगसे सर्दी पानेकी उम्मीद नहीं कर सकते। हमारा कोड हमें एक और स्पष्ट आज्ञा देता है। वही आज्ञा पुरुषत्व की, और मैं समझता हूँ—बुद्धि-मत्ता की भी है।

गि०—मैं वहस नहीं करता। लारेंज़ो भाईकी राय मैं जानना चाहता हूँ।

ला०—मुझे डर है कि हत्या हितकारी नहीं होगी। इससे मेरी राय नहीं है।

गि०—भाई एंटिनो, अब मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि समिति हत्याके पक्षमें न रहेगी। बहुमत यही है।

एं०—बहुमतको सिर झुकाता हूँ। पर एक सूचना अध्यक्षको देना चाहता हूँ—

एक पन्ना उलट कर एंटिनो पढ़ना शुरू करता है—

'सोमवार ता० १९ मार्चको सभा हुई। उपस्थिति १०।

वेंजिलो, सभापति।

'भाषणोंके बाद, सर्व-सम्मतिसे, तै पाया कि अलबर्टको अपना सदस्य स्वीकार करना घोर अपराध था। अब वह पीडमोंटका राजा बन गया है। राजा खासकर वह, जो आस्ट्रियनकी अधीनता स्वीकार करता है, प्रजा-सत्ताका दुश्मन है; इसलिये वह हमारा भी दुश्मन है। हमारी अक्षम्य ग़लतीके प्रति-शोध और प्रजासत्ता एवं क्रान्तिकी हित-रक्षाका एक उपाय है, वह है अलबर्टको नष्ट करना।

'सम्मति जब ली गई तो केवल से०—विरोधमें था।'

'उसके लिये कई कानों दबी हुई, 'ट्रेटर' (विश्वास-घातक) की आवाज़ आई।

'सबको शान्त करके वेंज़िलोंने घोषणाकी कि एलबर्टकी हत्या सभा द्वारा निर्णीत और उचित ठहराई गई।'

एं०—इस सूचनाके साथ मैं अध्यक्षको अपने निर्णय पर फिरसे विचारनेका निवेदन करता हूँ।

गि०—मेरा वही मत है जो मैं दे चुका। और समितिका भी वही मत है। बेंजिलोने अधिकारसे बाहर की बात की है। किसी दुराग्रहको बढ़ने देना ठीक नहीं है। एंटिनो भाईसे मैं यह आशा करता हूँ कि वह वेंजिलोको नायकका मत, और निर्णय,—स्पष्ट शब्दोंमें सुना देंगे।

एंटिनो खड़ा हो गया। एक गिलास खींचा, कुछ शराब उसमें उँडेली, फिर अपनी कुर्सीके पास आकर, पतलूनकी जेबमें एक हाथ डाल कर बोला—किन्तु मैं कहता हूँ,, बँट जाकर हम गिरेंगे, एक रहनेमें हमारी विजय है। हममें फूट पड़े, इससे कहीं अच्छा यह है कि हम अपने सिद्धान्तोंमें तनिक अवकाश रखना सीखें, और अपने मतको बहुत तंग और बहुत अन्तिम न बना दें।

यह कहकर एंटिनोनें गिलास ओंठसे लगा लिया।

गिडिटो एक टक अपने सामने देखता रहा, बोला नहीं।

लारेंज़ोने जबाब दिया—अनुशासन एक चीज़ है। उसमें ढील आई कि

संगठन भी ढीला हुआ। हमें ऐसा ऐक्य चाहिए जो हमारे कर्तृत्वको पुष्ट करे। कर्तृत्वको खोकर मेल बढ़ानेसे हम न बढ़ेंगे। हमें विभिन्नताका ऐक्य न चाहिए, हमें एकताका ऐक्य चाहिए। हमारा मत एक हो, काम एक हो, लगन एक हो। और इसका नाम है शक्ति। हमें वही चाहिए, और हम उसे कड़ाईसे अनुशासनमें बाँध रखेंगे, बिखरने न देंगे।...

इतना कहकर लारेंजोने भी अपना गिलास संभाला।

एंटिनोने कहा—हम खबरदार रहें कि हम अपने ऊपर बहुत ज्यादा जिम्मा न ले लें। मतैक्य असम्भव हैं। जिस राहसे यह सम्भव है, उसका नाम है बलात्कार, दमन, निरंकुश एक-तंत्रता। क्या हम छत्र-तंत्रताको धरती पर ला देनेके व्रतसे व्रती होकर ही यहाँ नहीं जमा हुए ? फिर क्यों हम ही अपने बीच निरंकुश एकतन्त्रता-सी खड़ी कर रहे हैं ?

गिडिटोने स्थिर-भावसे कहा—क्या हम बहस ही करें ? क्या हम निर्णय न करें ? निर्णय तो करना ही होगा। दायित्वसे डरना कापुरुषता है। निर्णय एक ही तरहका होगा। केवल निर्णय-हीनता ही है, जिसमें किसीको असंतोष न हो; निर्णयमें विरोध अनिवार्य है। सबको सब कुछ मानने और सब कुछ करने देना हो तो भला है, हम निर्णय न करें। सबको सब कुछ मानने और सब कुछ करने देना था तो भला था, हम समिति न बनाते, आडंबर न करते, सीधी तरह घर बैठते। लेकिन नहीं; एक बार, एक जगह, एक शपथके नीचे हम इकट्ठे हुए, तो अपनी जो कुछ मानने और जो कुछ करनेकी स्वतंत्रताको होम कर इकट्ठे हुए। अपनेको मिटाकर आज यहाँ हम जमा हैं। इसलिये हमारी अपनी स्वतंत्रता कुछ नहीं है। आज देशकी स्वतंत्रता पर हमने अपनी स्वतंत्रताको वारा है, धन्य होकर वारा है। और इस तरह इस एक प्रकारकी परतंत्रताको अपने ऊपर स्वीकार कर एक बृहत् स्वतंत्रताको अपने लिये पहचाना और अपनाया है।..अब, हम क्या निर्णय करें ? निर्णयका बोझ हम अपूर्ण प्राणियोंके ऊपर पड़ा है तो क्या हम उसे कंधे परसे फेंक कर चलते बनें ? जानता हूँ, बोझ भारी है। पर, फेंककर भागना भी नहीं हो सकेगा। अपनी परिमित बुद्धिके अनुसार ही हम फ़ैसला करेंगे, और अपनेको दी गई शक्तिके अनुसार उसे पूरा भी करेंगें। पर हम सतर्क रहें उसमें हमारा अपना कुछ न हो, अहंकारका गर्व न हो, प्रभाव न हो, मोह न हो। ठीकका ठेका कौन ले सकता है; पर इतना

कर चुकने पर, हमारा निर्णय ग़लत होगा, तो मानो हम उसकी ग़लतीसे अलिप्त रहेंगे। पर, चूँकि हमारे निर्णयके अंततः ग़लत होनेकी संभावना असंभव नहीं है, इसलिए हम निर्णय करनेकी ज़िम्मेदारीसे ही छुटें, यह नहीं हो सकता।.. और जहाँ तक मेरी गति है वहाँ तक देखकर मैं कहता हूँ कि बेंज़िलोने जो किया है वह करके भूल ही की है; तब, यह देखने और माननेके बाद उस भूलको बढ़ा देना हमारे लिये किसी प्रकार भी क्षम्य और संभव न होगा।

ऐंटिनो ने उत्तर न दिया, वह शराब ढालता रहा। लारेंजो भी इसीमें व्यस्त हो रहा।

गिडिटो खड़ा हो गया, नक़शेके सामने आ रहा, और उसे आँख गाड़कर देखता रहा, देखता रहा। मानों बेंज़िलोंके भाग्यको उस नक़शेमेंसे पढ़ लेना चाहता था।

४

संध्या हो गई है। कमरेमें गिडिटो अकेला है। वह प्रतीक्षामें है—कालेज चार घंटोंका खत्म हो चुका, बेंजिलो अब तक कहाँ रहा? लौटा नहीं! खाना ठंढा हो रहा है। कमरेके छज्जे पर आकर उसने सड़कके दोनों तरफ आँख फैलाकर देखा। बेंज़िलोका कहीं पता नहीं!

वह आकर पलंग पर बैठ गया। किताब खोल ली। लेकिन पाँच ही मिनटमें किताब बन्द कर देनी पड़ी। किताबके अक्षर जैसे तैरने लगते थे; उसका मन जैसे भागा भागा फिरता था।

लैंडलेडीको बुलाया; कहा—खाना परोसनेकी अभी जरूरत नहीं; लेकिन तैयार रहना चाहिए। इतना कहकर जो हाथ पड़ा वही टोप ले, पिस्तौल जेबमें डाल बाहर आ निकला। और मैरिथके यहाँ पहुँचा।

मैरिथ वह है, जो यदि गिडिटो न होता तो बेंज़िलोकी विवाहिता होती। बेंज़िलो रोज़ इसके यहाँ आता है, और चला जाता है। मैरिथ अपने धनी माँ-बापको छोड़कर यहाँ अपने बल और अपने काम पर अकेली रहती है—और अपने दिनकी राह देखती रहती है।

वह कुलीन है, और अपनी कुलीनता पर लज्जित है। सुन्दर है, और अपने सौंदर्यको रूखा रखती है। कुलीनताके सम्बन्धमें अपनेको बिल्कुल उदासीन नहीं बना सकी है और सौंदर्यके बारेमें सर्वथा अंजानकार नहीं है। वह अपनेसे तंग है। वह पुरुष हो रहना चाहती है, क्योंकि वह स्त्री है। उसकी वृत्ति जोखम ढूँढती है। समितिकी वह अत्यन्त तत्पर सदस्या है। उसे चैन नहीं है, इसलिए वह सदा उद्यत और गतिशील है। निम्नतामें आकर्षण खोजती है, क्योंकि निम्नतामें उसे प्रीति नहीं है; क्योंकि वह निम्न नहीं हैं। वह घर ही पढी है, और ललित कलामें उसने विशेष अभिरुचि पाई है। संगीत सीखा है, और चित्र बनाये हैं। ताज़े और हरे अपने स्वर-पर्णके दोने बनाकर उसमें अपने भीतरका सुर्ख़ दर्द बूँद-बूँद कर, भरकर रख दे कि किसीके ओठ उसे चखें—वय पाकर भूली भटकी एकाकी घड़ियोंमें यह भी उसने किया है; पर यौवन जब प्रमत्त था और स्वीकृति चाहता था और भीतर लहूकी बूँद-बूँद मानों अपना रंग देखनेके लिये मचल रही थी, तभी विधिने उसकी अजेयता पर एक ठेस पहुँचाई। तभी क्रान्तिका कठोर कर्म-सन्देश उसने सुन पड़ा। उसने अपनी तूलिका तोड़ दी, वायलिन फेंक दी, और देशकी स्वतंत्रताके अर्थ मरनेके लिये जीनेके इरादेसे अपने ख़ाली मनको भर कर वह रहने लगी।

ऐसे ही समय बेंजिलो पथ-प्रदर्शक बन कर उसके जीवनमें आ मिला। बेंजिलोने उसके इरादेके सामने कर्मकी राह खोलकर मानो बिछा दी। यहाँ चलना ही चलना है; यहाँ करते रहना है और मरते रहना है। अपनेको याद करते हुए रहनेकी बात यहाँ नहीं है; अपनेको सर्वशः भूलकर यहाँ रहना होगा। जीवन इतना थोड़ा है कि मौतके कामोंको पूरा करते रहनेके उसके कर्तव्यमेंसे निकाल कर एक भी अवकाशका क्षण जीवनको अपने लिये नहीं दिया जा सकता!

और उसका परमात्मा जानता है, वह यही माँगती है। वह यही माँगती है। वह एक भी क्षण नहीं चाहती। चाहती है, एक क्षण भी उसे न मिले। एक भी क्षण उससे कैसे उठाया जायगा? क्योंकि उसका क्षण उसका युग है। और उसकी तूलिका टूट चुकी है, और वायलिन फिंक चुकी है—अब वह उस क्षणका क्या बनायगी?

वह अपना मन, प्राण और समय किसी पर डालकर ही तो जी सकती है, क्योंकि वह क्या रह गई है जो कुछ अपने पास रख सके? किसीके लिए जीना

चाहती थी—जब वह खो गया है तो वह अब मौतके लिये जियेगी और देशके लिये मरेगी।

इसलिये—'इंक़लाब ज़िन्दाबाद'। वह सबसे अपनेको तोड़ इंकलाबके लिये रहेगी; इस अनुष्ठानमें बेंज़िलोसे दीक्षाका ऋण लेगी और उससे उऋण होनेमें लगी रहेगी। क्रान्तिपर अपना जीवन वारेगी। देशपर अपनेको भूल जायगी!

और कुछ ही दिनों बाद, अपने घरसे अलग इस स्थान पर उसने अपनेको समितिमें और समितिके काममें पाया।

पर, हाय!

यहाँ भी गिडिटो····

९

गिडिटोने कहा—मैरिथ, बेंजी अभी घर नहीं पहुँचा! क्या यहाँ भी नहीं आया?

मैरिथ—नहीं, यहाँ तो नहीं आया। पर तुम आओ, बैठो। शायद आता हो।

'बैठनेकी फुर्सत तो कम है।'

'क्यों जी, बेंज़िलोको अपने हाथमें रखनेसे क्या तुम्हारी मुट्ठी पूरी भर जाती है? क्या उसमें और किसीके लिये समाई नहीं है?'

'मैरिथ, बेंजोने अपना सारा प्यार तुम पर वार दिया है। इटलीको स्वतंत्र होने दो; देखो मैं खुद अपने हाथों तुम्हारा ब्याह करूँगा। उससे पहिले ब्याह करके बेंजो अपना नाश कर लेगा। मैरिथ, वह नेपोलियन बनना चाहता है—नेपोलियन!'

'और, क्यों जी, तुम क्या बनोगे? तुमने अपना प्यार किसी पर वार रक्खा है?'

'सो तुम नहीं जानतीं?—नेपोलियन पर!'

'तुम भी आदमी हो!'

'कौन कहता है? मैं स्त्री होता तो ज्यादा ठीक रहता।···अच्छा अब मैं चला।'

'तनिक ठहरो तो। वेंजी आना ही चाहता होगा! इतने, थोड़ा आतिथ्य ही स्वीकार कर लो।'

'अच्छा लाओ, पाँच मिनट बैठता हूँ। लाओ क्या देती हो?'

'नहीं, उतावले मत वनो। लेकिन हाँ, तुम शराब तो पीते ही नहीं।'

मैरिथने कुछ रूखे विस्कुट ला रक्खे। विस्कुटकी जल्दी-जल्दीमें नक़ाशीदार चीनीकी एक वढ़ियाँ तश्तरी गिरकर फूट गई। दो तीन विस्कुट भी गिरकर चूर हो गए। विस्कुट रखकर मिनट भरमें पड़ोसीसे टोस्ट और चाय ले आई।

सव कुछ चखकर गिडिटोने घड़ीकी तरफ देखकर कहा—ओह! अव तो जाना ही होगा। क्षमा।—कहकर प्रतीक्षा नहीं की; उठकर सीधा चल दिया।

'ठहरो तो,···अरे, ठहरो····अच्छा वस, पाँच मिनट!'

'अव नहीं मैरिथ, देखो वना तो फिर आऊँगा।'

गिडिटो नहीं ठहरा। जीने पर उतरते-उतरते उसने मनमें कहा—'मुग्धा मैरिथ!'

६

गिडिटो फ़िर सड़क और गली, गली और सड़क लाँघता हुआ एक अँधेरी गलीमें जा पहुँचा। और वहाँसे फिर उस कमरेमें जहाँ सभा जुड़ी थी। वेंज़िलों अध्याक्षासन पर तमतमा रहा था।

गिडिटो जव वहाँ दाखिल हुआ तो सभा एकदम रुक गई। अयाचित उसका पहुँचना शायद वांछनीय न था।

अध्यक्षासन परसे वेंज़िलोंने कहा—'गिडिटो, किसकी इजाज़तसे तुम अन्दर आए?

'वेंजी, चलो खाना ठंढा हो रहा है। पहले खा लो, तब और कुछ करना।'

'गिडिटो, वेवकूफ मत वनो। कैसे तुम यहाँ घुस आए?'

'इन्तजार करते-करते। नहीं तो क्या रात भर बैठा रहता क्या? भूख लगी, तुम्हें ढूँढता-ढूँढता चला आया।'

'भाड़में जाय तुम्हारी भूख। मै जरूरी काम कर रहा हूँ।'

'कोई जरूरी काम नहीं है। अभी तो तुम्हारा खाना सबसे जरूरी है।'

'गिडिटो, मैं प्रेसीडेंट् हूँ। कहता हूँ तुम अभी चले जाओ।'

'तुम्हें कुछ खयाल भी है? कालेज खत्म हुए पाँच घंटे हो चुके। तबसे भूखे हो, कुछ नहीं खाया। तुम्हें भूखे छोड़कर मैं कैसे चला जाऊँ?'

'गिडोटो वेवकूफ़ी करोगे तो सख्ती करनी पड़ेगी।'

'करो सख्ती, कौन मना करता है। पर परमात्माके लिये भूखे मत रहो।'

वेंज़िलोने झल्लाकर कहा—वेंजमिन, गिडिटोको हम यहाँ नहीं चाहते। तुम उसे वाहर निकाल सकते हो?

वेंजमिन नामका व्यक्ति उठा। उठकर देखा और फिर बैठ गया—जी नहीं।

'नहीं!' अध्यक्षने कहा, 'कोई है जो इसे वाहर कर दे?'

दो व्यक्ति आगे वढ़े। वह काफ़ी पास आ गए कि गिडिटोने रिवाल्वर उनकी तरफ तानकर कहा—चलो, लौट जाओ अपनी जगह पर! खबरदार, जो कदम भी आगे रक्खा।

फिर वेंजिलोके पास पहुँच कर और उसकी वाँह पकड़ कर कहा—चलो, बेंजी तमाशा न करो। घर चलो।

बेंजिलोने उसे ज़ोरसे धकिया दिया। गिडिटो गिरते-गिरते बचा। इतनेमें ही सभाके दो-तीन सदस्य उसकी तरफ लपके। उसने भीतरकी जेबसे एक तिरंगा कपड़ेका टुकड़ा निकाला और दोनों हाथोंसे ऊपर उठाकर चिल्लाया—सभ्यो, यह देखो। देखकर चाहे गोली मार दो,—मेरे दोनों हाथ ऊपर हैं। नहीं तो उसका सम्मान रक्खो और इस सभाको बरखास्त कर दो।

सभ्य, जो बड़े असभ्य हो रहे थे, अब सबके सब बड़े सुन्न बैठ गये।

'सुनो! नायककी आज्ञा है, यह सभा यहीं वर्खास्त होती है। मेरे तीन कहते कहते सब यहाँसे चले जाँय। ए····क।

दो······। '······'।

कमरा बिलकुल खाली था।

गिडिटोने अब बेंज़िलोंसे कहा—चलो बेंजी, खाना खाने चलें।

बेंज़िलो भौचक था। पूछा—तो नायक तुम हो?

'हूँ तो हूँ,—पर चलो, भूख लग रही है।'

'कहाँ चलूँ?'

'घर।'
'मैरिथके यहाँ नहीं ?'
'वहाँ चाहो, वहाँ जाओ।'
'तुम न चलोगे ?'
'मैं अभी वहींसे आया था।'
'मैरिथके यहाँसे आए थे ?'
'हाँ।'
'अब न जाओगे ?'
'नहीं।'
'घर पर मिलोगे ?'
'ज़रूर।'
'मै घर पर न आया तो ?'
'तो बुरा होगा।'
'क्या होगा ?'
'बहुत बुरा होगा।'
'तो मैं घर पर न आ सकूँगा।'
'न आ सकोगे ?—कहाँ रहोगे ?'
'सो बतलानेकी ज़रूरत नहीं।'
'तो मैं भी साथ चलता हूँ।'
दोनों, साथ, मैरिथके स्थानकी ओर चले।

मैरिथके घर पर—

बें०—मैरिथ, तुम्हें पता है हमारे नायक गिडिटो महाशय हैं ?

मैरिथको यह पता न था। पर यह पता था कि बेंज़िलो नायकके प्रति बहुत सद्भावना नहीं रखता। नायकके नरमपन, ढीलेपन और सुस्ती पर बेंज़ी अपने तीक्ष्ण-कटु विचार मैरिथके सामने कई बार उत्तेजनाके साथ प्रकट कर चुका था। इसलिए जब गिटिडोके नायक होनेकी सूचना उसे मिली, तो वह प्रसन्न न हो सकी। न जाने क्यों, उल्टी पीली पड़ गई। उसने आतंकसे गिडिटोकी ओर देखा। इस दृष्टिमें भरे प्रश्नको अच्छी तरह न समझकर उसने कहा—'नायक कितना भोला भलामानस है, यह तुम शायद जानते ही नही ?'

वेंज़िलोने कहा—मैं खूब जानता हूँ। उसके भोलेपन पर मैरिथके सामने कई बार तरस खा चुका हूँ।'

इस पर मैरिथ फिर दहल-सी उठी। कुछ लेने गई तो गिडिटोके कानमें कह गई—'खबरदार रहना।' लौटकर आई तो गिडिटोने कहा—'बेंज़ी, क्या नेपोलियनसे खबरदार रहना होगा ?'

बेंज़िलोने उत्तर दिया—नेपोलियन खुद अपनेको नहीं जानता। लेकिन खबरदार रहना अच्छा ही है।'

काफ़ी रात बीते वे अपने डेरेको चले। पर रास्तेमें ही न जाने कब, बेंज़िलो बे-पता हो गया।

७

रात अँधेरी है, सुनसान है। पतलूनकी दोनों जेबमें पिस्तौल है। वेंज़िलो महलके दरवाजे तक आ गया है। दरवाज़े पर संतरी टहल-टहल कर पहरा दे रहा है।

वेंज़िलोके आने पर संतरीने सलाम किया।

'सब ठीक है ?'

'बिलकुल।'

'उसी कमरेमें ?'

'हाँ।'

रास्तेमें जितने मिले, उनमेंसे किसीका अभिवादन लेकर, किसीको फुसलाकर, कुछको डरा-धमकाकर और बाक़ी बचे दो-एकको ठंडा करके वेंज़िलो, उस कमरेके दरवाज़े पर आ गया। कमरा प्रकाशित था। एलबर्ट अकेला रहता था, अभी तक उसने ब्याह न किया था।

बेंज़िलोने केवल झँपे हुए दरवाज़ेको खोलकर कहा—'आ सकता हूँ ?'

उत्तर मिला—'आइए'।

उत्तर सुनने न सुननेकी पर्वाह किये बिना वह अंदर दाखिल हो गया।

एलबर्ट इतनी रात गए भी एक कुर्सी पर बैठा था। सामने छोटी-सी मेज थी। उस पर कुछ काग़ज़ एक रंग-बिरंगे बहुत बड़े शंखसे दबे हुए थे। पास

ही एक ऊँचे स्टूल पर शेडदार लैम्प था, जो अच्छा खुशनुमा था; पर राजाओंके लायक बिलकुल न था। एलबर्टका सिर अपने दोनों हाथोंमें थमा हुआ था। एक कोहनी मेज़ पर रक्खी थी दूसरी कुर्सीकी बाँह पर। उसके माथे पर बल थे। ऐसे बैठे-ही-बैठे अनायास ही उसने 'आइए' कहा था।

आगत व्यक्तिको जब उसने देखा, तो वह बिलकुल बदल गया। हाथ दोनों कुर्सीकी बाँहों पर आराम करने लगे। सिर सीधा हो गया, और वह थोड़ा हँसा।

—'ओहो, बेंज़िलो हैं!—मैं तो तुम्हें भूला जा रहा था।'

'मैं भूलने दूँ तब न!'

'यह भी ठीक है। आज शामको मुझे खबर मिली थी कि आप रातको दर्शन देंगे। पर अभी-अभी तो मुझे इसका ध्यान उतर ही गया था।'

'आपकी खबर ठीक थी। क्या इसके आगे और कुछ खबर भी थी?'

'उसे मैं आपसे जाननेकी आशा रखता हूँ।'

'आशा तो आप ग़लत नहीं रखते।'

'तो आज्ञा हो मेरे लिए—'

'एलबर्ट, अभी जल्दी काहे की है? तुम्हें जल्दी हो तो बात दूसरी।'

'बड़ा सन्तोष है कि आपको जल्दी नहीं। नहीं तो जल्दी आपके मिज़ाजमें एक खास चीज़ है। फिर निश्चयके बाद देरीका कारण भी क्या?'

'एलबर्ट, मालूम होता है, तुम अपने भाग्यसे परिचित हो। शायद समझते हो, प्रयत्न करनेसे भाग्य तो टलेगा नहीं, इसी लिए इस तरह यहाँ निश्चित बैठे हो। पर भाग्यको तुम्हारे प्रयत्नोंकी या निश्चिन्तताको कुछ भी पर्वाह नहीं।'

'बेंज़िलो, तुम जानते हो, मैं भाग्यमें विश्वास करता नहीं। पर अब मालूम होता है, जैसे उसे मानना अच्छा है! मुझे भी विश्वास होता जा रहा है,—होनहार टलता नहीं।'

'जाने दो, इन बातोंको। तुम आज राजा हो, कल हमारे साथ मिलकर राजाकी दुश्मनीका दम भरते थे! वह क्या धोखा नहीं है,—और तुम इस पर दुःख नहीं करते?'

'यही तो मुश्किल है कि अफ़सोस मैं नहीं कर पाता। धोखा-वोखा मैं जानता नहीं। लेकिन मालूम होता है, इस तरह इटलीके लिए मैं शायद कुछ कर सकूँ।'

'एलवर्ट, तुम्हें शरम नहीं आती ? राजा बने बैठे हो, जब कि सैकड़ों-हजारों तुम्हारे साथी तुम्हारी ही जेलोंमें सड़-गल रहे हैं। तुम्हारे देशवासी गुलामी और दरिद्रताके नीचे कुचले जा रहे हैं, तब तुम ऐशो-इशरतमें पड़े हो, और आस्ट्रि-यनके जूतेके नीचे अपने उन भाइयों पर हुकूमत चलाते हो ?'

'भाई, लाज आती ही नहीं, तो क्या करूँ ? मैं उसे जबरदस्ती बुलानेकी आवश्यकता नहीं समझता। आज इस कुर्सी परसे सब देश-सेवकोंको नहीं तो कुछको तो मैं जेलसे छुड़ा ही सकता हूँ। पर तुम क्या कर सके हो, क्या कर सकते हो ?···और यह कुर्सी महलमें तो रक्खी है; पर खूब देख लो, बिल्कुल मामूली है। क्या आधी रात तक ऐसी कुर्सी पर जागते बैठना तुम्हारी निगाहमें पाप है ? और तुम यह नहीं जानते कि हुकूमत करनेवालोंको अपने सिर परका जूता ज्यादा खलता है। क्या मैं तुम्हें बताऊँ कि आस्ट्रियन मुझसे जितना डरते हैं,—तुमसे उतना नहीं ?'

'तुम आज गद्दीके मोहमें पड़कर इटलीको बेच रहे हो।'

'शायद।'

'तुम यह नहीं समझते ?'

'अभी तक नहीं।'

'लेकिन तुमको समझनेके लिए ज्यादा वक्त नहीं दिया जा सकता।'

'ठीक है, मैं पहले ही काफ़ी ले चुका हूँ।'

'लेकिन तुम्हें अपना अधिकार है, राष्ट्रको खो देनेका नहीं।'

'राष्ट्रको न समझनेका जैसा तुम्हें अधिकार है, वैसा मुझे भी तो उसे समझनेका अधिकार है।'

'हम इसको बर्दाश्त नहीं कर सकते।'

'बर्दाश्तकी आदत पैदा करनी चाहिए।'

'वह आदत अभी पैदा करनेका वक्त नहीं है। अभी समय है कि अपनी गति पर पछताओ, लजाओ, और पीछे मुड़ो।'

'नहीं तो ?'

'···नहीं तो परिणाम भयंकर होगा। हम अपने देशका नाश नहीं देख सकते।'

'बेशक तुम अपने देशका नाश या लाभ नहीं देख सकते।'

'जो हो, अब वक्त कम है।' बोलो—क्षमा या दंड ?

'तुम्हें ऐसा अधिकार किसने दिया ?'

'समझो कि पहली घड़ीसे जीवनकी अन्तिम घड़ी तक एक—बस एक—राष्ट्रकी चिन्ता रखनेंवाले तरुणोंने।'

'तो उनसे कहो, उन्होंने भूल की। ऐसा अधिकार परमात्माके हाथसे छीननेंकी आवश्यकता नहीं।'

'खैर, हुआ' इस भावसे ध्वनिसे बेंजिलोने कहा—

'बोलो, क्षमा या दण्ड ?'

'दंड या पुरस्कार, जो भी होगा जरूर मिलेगा; पर क्षमा ! ...क्षमा नहीं।'

'क्षमा नहीं ?....'

यह कहकर उसने जेवमें हाथ डाल दिया। एलवर्टने सब कुछ देखा। वह भी देखा, जो बेंज़िलो नहीं देख पा रहा था। बोला—'बेंज़िलो, एलवर्टमें सीज़रका खून है, और इटलीका देश-प्रेम है। क्षमा नहीं।'

'नहीं ?—तो लो।'

यह कहा और पेस्तौल खींच ली। इतनेमें ही किसीने कस कर बाँह पकड़ लिया। घोड़ा दवा। गोली शेड और लैम्पको चूर-चूर करती हुई निकल गई। रोशनी बुझ गई। गुप्प-अन्धेरा हो गया।

गिडिटोने पिस्तौल बेंज़िलोके हाथसे छीन कर फेंक दी। वह झनझनाकर फ़र्श पर पड़ी।

कुछ भी न दीख पड़ रहा था। बेंजिलोनें कहा—'कौन है ? अलग हट जाओ नहीं तो सिर फोड़ दूँगा।' इतना कहकर दूसरी जेवमें उसने हाथ डाल लिया।

'गिडिटोने एक ज़ोरकी चपत उसकी कनपटी पर जड़ दी।

'कमबख्त।—यहाँ आया है मरने। चल घर, चल भाग।'

जब चलने और भागनेमें देर लगी तो कान पकड़कर उसे ढ़केलते हुए कहा—

'अरे भागता है या नहीं ? भाग जा झटपट। नहीं तो मर जायगा।'

इतनेमें ही एक गोली सनसनाती हुई गिडिटोकी बाँहको आर-पार कर गई और बेंज़िलो भाग गया।

❀ ❋ ❀

शोर मचाकर जब नौकर चाकर सिपाही-प्यादे इकट्ठेके इकट्ठे वहाँ हाजिर हुए और रोशनी की, तो गिडिटो बाँह पकड़े जहाँका तहाँ खड़ा था, और एलबर्ट कुरसी पर वहीं पिस्तौल तानें बैठा था।

गिडिटो पकड़ लिया गया।

बेंजिलो बेतहाशा घबड़ाया-सा दौड़कर जब सदर दर्वाजेके बाहर आया, तो किसीने पुकारा—

'बेंजी!'

देखा कि सामने मैरिथ चिन्ता-व्यग्र खड़ी है, मैरिथने पूछा—

बेंजी, 'गिडिटो कहाँ है ?'

'गिडिटो ?'

बेंजिलोकी घबड़ाहट मैरिथसे छिपी न रह सकी। उसने ज़ोर देकर कहा— 'हाँ, गिडिटो।'

'वह तो मुझे अन्दर नहीं मिला।'

'अन्दर नहीं मिला ?'

'मुझे नहीं मालूम।'

उसने चिल्लाकर पूछा—'नहीं मालूम ?'

'नहीं! ··लेकिन तुम इस वक्त यहाँ कहाँ घूम रही हो? चलो घर चलें।'

'गिडिटो रात-रात भर तुम्हारी तलाशमें घूमे,—और तुम्हें अब चैनकी सूझे। ऐसे ही हो तुम? ··सच बताओ गिडिटो कहाँ है ?

'मुझे कैसे मालूम ?'

'यहीं खत्म हो जाओगे।—बोलो, नहीं मालूम ?'

बेंज़िलोनें देखा, पिस्तौल सीधी उसके मुँहकी तरफ़ तनी है, मैरिथकी आँखोंमें जैसे वज्र-काठिन्य जल रहा है। वह खुद निहत्था था, दूसरा पिस्तौल भी वहीं छूट गया था। उसनें कहा—मालूम होता है, मैंने उसे गोली मार दी है।'

मैरिथ इसपर एक चीख छोड़कर और रिवाल्वर बेन्जिलोके ऊपर फेंक कर अन्दर भाग गई। वह भरी पिस्तौल छूटी नहीं, उसके बदनसे लगकर धरती पर गिर पड़ी।

बेंज़िलोनें उसे उठा लिया।

❀ ❀ ❀

अन्दर जाकर मैरिथने देखा, गिडिटोको कई रक्षक हथकड़ी डाले लिये जा रहे हैं। वह बाँहको कसकर पकड़े हैं। उसने जब मैरिथको देखा, तो कहा—

'मैरिथ! तुम यहाँ कहाँ? बेञ्जी तो तुम्हें याद कर रहा था। जाओ, उसकी देख-भाल करना। कहीं वह रो-रोकर मर न जाय।'

मैरिथ गई नहीं,—वह वहीं खड़ी देखती रही।

'धित्, यह क्या आँखें फाड़ रही हो।..जैसे बेंज़ी मैं ही हूँ। चलो, जाओ, बेंज़ीको ढूँढ़ कर उसे सांत्वना दो।'

वह फिर भी नहीं गई।

'मैरिथ, देखो, नहीं जाओगी तुम?'

मैरिथ चुपचाप चली गई।

८

गिडिटोके खिलाफ़ प्रमाण सङ्गीन थे। वह रातको महाराजके कमरेमें पाया गया है। बाँहमें गोलीका घाव है। जेबमें एक पिस्तौल मिली है। इतना होने पर भी वह छूट गया। एलबर्टका इस सम्बन्धमें खास आज्ञा-पत्र प्राप्त हुआ था।

घर पर आकर उसनें देखा, बेंज़िलोका सब सामान अस्तव्यस्त पड़ा था। उसके दिलमें एक अज्ञात आशंका घर कर बैठी। वह मैरिथके पास गया। बेंज़ी वहाँ न था। गिडिटोने डाँटा; मैरिथनें अपनी कर्त्तव्यपरता जताते हुए, क्षमा माँग कर कह दिया—'मैंने बहुतेरा ढूँढ़ा, मुझे वह नहीं मिला।'

गिडिटोने कहा—'और ढूँढ़ो, मैरिथ! जब तक न मिले, तब तक ढूँढ़ो।'

'ढूँढूँगी तो; पर तुम भी कहीं खो न जाना।'

'मैं नहीं खोऊँगा,—पर उसे तो पाना ही होगा।'

'जो कहोगे, सो करूँगी; लेकिन कहे देती हूँ, वह बहुत जीता न रहेगा।'

'यह तो मैं भी जानता हूँ; लेकिन ऐसे रूठ कर तो वह न जाने पायगा।'

'गिडिटो, तुम ऐसे-ऐसे क्यों हो रहे हो?'

'मैं कुछ भी नहीं हो रहा। मैं यह सोच रहा हूँ कि बेंज़ीके अब नेंपोलियन बननेका अन्त आ गया है। मेरे पास बहुत सुख था; अब मेरा सुखका आधार छिन जायगा। और, मैरिथ तुम्हारा सोहाग....'

'ठहरो गिडिटो ! मेरे सुहागकी तुम चिन्ता करते होते तो क्या बात थी ? मैं जानती हूँ, मुझे अपने सोहागका अर्घ्य किसकी वेदी पर चढ़ाना होगा। वह देवता स्वीकार करें या तिरस्कार कर दें, अर्घ्य तो समर्पणके ही लिए होता है।

'तो मैं तुम्हारे वेंज़ीको ढूँढ़ने जाता हूँ।'

कहकर वह चल दिया। मैरिथने सुना-सुना कर कहा—'जाओगे तो हो ही। मेरे कहनेसे रुकनेवाले तुम थोड़े ही हो।'

९

गिडिटोके कमरेमें—

गि०—छि:, वेंज़ी, इस तरह भागा करते हैं ?

वें०—तुम वार-वार इतने वड़े क्यों वनते हो ? मुझे इस पर वहुत खीझ उठती है।

गि०—मैं वड़ा वनता हूँ.! वोलो, कहो तो तुम्हारे जूते साफ़ कर दूँ।

वें०—तुमने मुझे थप्पड़ क्यों मारा था ?

गिडिटोने यह नहीं कहा कि थप्पड़ गोलीसे वहुत छोटा है। उसने कहा—'वस यही वात है ? तो यह लो, जितने चाहो मेरी पीठ पर जमाओ।'—यह कह कर वेंज़ीके पास एक वेंत रख दी।

'गिडिटो, तुम वड़े होशियार हो; लेकिन मैं तुम्हें वड़ा मानूँगा ही नहीं।'

'तुम तो हो पागल। मुझे वड़ा मानो या छोटा मानो। वलासे, कुछ भी मानो; पर अपना मानो।'

'जितनी ही ऐसी वात कहोगे, उतना ही मैं तुम्हें दुश्मन समझूँगा।'

'अच्छा, दुश्मन ही समझो; लेकिन अव मैरिथके पास जाओ। वह याद कर रही थी। नहा-धो लो और कपड़े वदल लो। कैसे मैले हो रहे हो !'

वेंज़िलो मनसे चाहे कुछ भी कहे; पर ऐसी वातोंमें उसका गुजारा होता है गिडिटोकी आज्ञाओं पर ही। वह स्नानके लिये चला गया।

गिडिटोनें इतनेमें एक नया साफ़ सूट निकाल रक्खा। लौटने पर ठीक-ठीक करके उसे मैरिथके पास रवाना कर दिया।

मैरिथके घरका दरवाजा बन्द था। उसने नौकरनीको आज्ञा दी थी, कि जो आये, पहले उसे सूचना दी जाय। वेंज़िलोंने दर्वाजा खटखटाया, नौकरनी मैरिथके पास पहुँची। पूछा गया—'कौन है?'

'वेंज़िलो।'

'उनसे क्षमा माँगकर कहना, मेरे मस्तकमें बड़ी पीड़ा है। अभी न मिल सकूँगी। फिर पधारें।'

नौकरनीके मुँहसे जब उसने यह सुना, घड़ों पानी उसपर गिर गया। उसने सोचा–'गिडिटोने मुझे यहाँ तक बेवकफ़ बनाया! उसकी यह हिम्मत!' घर जाकर सीधा पलँग पर पड़ गया। गिडिटो अनुपस्थित था।

१०

इधर गिडिटो नायक-गोष्ठीमें आया है। वही कमरा, वे ही लोग।

लारेंजो—वेंज़िलोका अपराध अक्षम्य है।

एंटिनो—मैं मानता हूँ, समितिके नियमोंके अनुसार उसने बहुत बड़ा अपराध किया है। किन्तु नियमोंमें संशोधनकी बहुत आवश्यकता है, उनमें जकड़े रहनेकी इतनी आवश्यकता नहीं है।

ला०—नियम-नियम हैं और जबतक वे बदल नहीं जाते, तबतक उनका उल्लंघन सर्वथा दण्डनीय है।

गिडिटो—अपराध गुरुतम हो, तो वह हमेशा विचारणीय है। इसके विचार और फैसलेके लिये एक की बुद्धि पर निर्भर रहना ठीक नहीं मालूम पड़ता। मैं तीन आदमियोंकी दण्ड समितिको इसका भार सौंप देना चाहता हूँ।.... भाई एंटिनोकी क्या राय है?

एं०—अपराधीके हितकी रक्षामें यह सबसे उत्तम उपाय है।

गि०—भाई लारेंज़ो!

ला०—न्याय-सिद्धिकी इसमें पूर्ण आशा है।

गि०—मैरिथ, सिपियो, गैरिबाल्डी,—इन तीनोंकी दण्ड समिति होगी। भाई एंटिनो अभियुक्तके पक्षकी ओरसे वकील होंगे; भाई लारेंज़ो अभियोगकी ओरसे। मैं इससे सम्बन्ध नहीं रखना चाहता।

एं०—नायकको अपनी ज़िम्मेदारीसे बचनेका अधिकार नहीं होना चाहिए।

ला०—मेरा प्रस्ताव है कि दण्ड-समितिका फैसला नायकके हस्ताक्षके बाद प्रामाणिक हो।

एं०—विल्कुल ठीक।

गि०—आप लोग छोड़ेंगे नहीं। बड़ी अनिच्छासे यह भार भी मुझे अपने सिर लेना होता है। भाई एंटिनो इसका ध्यान रक्खें कि अभियुक्तको सूचना न हो। सबसे इस सम्बन्धमें समानता, बन्धुता और प्रजातन्त्रके नाम पर, इटलीके मान-चित्रकी छत्र-छायामें शपथ ले ली जाय।....सबको ध्यान रहे, परमात्माकी एक विभूतिको, एक परमात्मा-खण्डको, मारने या जीवित रहने देनेका भार उनपर है।

११

घर पर गिडिटो आया तो बेंज़िलो आँखें मूँदे सो रहा था। इस समय इस चेहरेमें, जिसके झरोखे झँप रहे थे, कैसा मनोमुग्धकारी भाव था! न गुस्सा था, न स्नेह था, न हास्य था, न कुछ था। बस, एक अमूल्य बालपन था, एक भोली स्वाभाविकता थी। उसे मालूम पड़ा, जैसे इस सौन्दर्यका यह अंतिम क्षण है।

वह सामने कुर्सी लाकर बैठ गया। बेंज़िलोके बाल उसके माथे पर आ रहे थ। उसने उन्हें पीछेको सरका दिया। वह फिर वहीं आ गिरे। उसनें फिर सरका दिया। अबकी तीसरी बार उसने नहीं सरकाये। तीन चार हिले-मिले बालोंकी इस उद्दण्ड लटको वह देखता रह गया। कैसे सुनहरे सुनहरे बाल थे। और सबके सब तो सिर पर अच्छी तरह लेटे थे, यही लट कैसी हठ करके उसके माथेके आगे आ-आ पड़ती थी।

गिडिटोनें उस लटके अगले सिरेको कैंचीसे काट लिया। फिर बालके वे नन्हें-से टुकड़े उसने दराज़से एक लाकेट निकालकर उसमें बन्द कर दिये।

फिर अलग जाकर वह अपनी किताब पढ़ने लगा। लेकिन कौन जानता है, वह बेचारी किताब कैसी क्या पढ़ी गई!

१२

गिडिटी और बेंज़िलों शतरंज खेल रहे हैं। गिडिटो हार पर हार रहा है। फिर भी जैसे हारना चाहता है। आज वह जैसे दिन भर हर एकसे हारता रहना चाहता है।

बेंज़िलो, बेचारा बालक, झल्ला रहा है। इस शतरंजके वक्त वह सब कुछ भूल जाता है। मात ज़रा-ज़रासी देरमें हो रही है—इस पर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा है।

'गिडिटो, क्या हो रहा है ? यहाँ चलोगे तो बुरी शह लगेगी।'

'अरे, हाँ !'

....

'अच्छा, यह लो, मात हो गई।'

'अच्छा, बेंज़ी, अबके लो, मिनटोंमें मैं तुम्हें मात कर देता हूँ।'

'मात क्या खाक दोगे ?'

'खाक-वाक मत चाहो जी, मात दूँगा—मात ! चारों खाने मात !'

'अच्छा।'

खेलना शुरू हुआ ही था कि सिपियो कमरेमें दाखिल हुआ। गिडिटो पीला पड़ गया। बेंज़ी आगेकी और चाल सोच रहा था। गिडिटोने कहा—

'बेंज़ी तुम नहाये नहीं ! घंटोंसे शतरंज ही होती रही। इसे यों ही बिछी रहनें दो। जाओ नहा आओ।'

'मैं कहता हूँ, तुमसे क़यामत तक मात न हो।' बेंज़ीने कहा।

'अच्छा नहाके आओ, फिर देखना।'

उसके चले जानें पर सिपियोने फ़ौजी सलाम करके एक लिफ़ाफ़ा निकालकर पेश किया। गिडिटोने फ़ौरन उसे खोल लिया। लिखा था—

बेंज़िलोने—

अ. नियम-विरुद्ध, नायक-गोष्ठी की बिना सूचना और आज्ञाके अलग दल बनाना प्रारम्भ किया।

आ. समितिकी नीतिके खिलाफ़, नायक की स्पष्ट आज्ञाको तोड़कर, एलबर्ट की हत्याका प्रयत्न किया।

इ. इस प्रकार निरंकुशता और आज्ञोल्लंघन की प्रवृत्ति बढ़ाई ।

ई. नायकको खतरेमें डाला ।

इसलिए—

प्राणदण्ड

इसके नीचे तीनों जजोंके हस्ताक्षर थे । नींचे एक और नोट था—

'मैरिथ दण्डकी पूर्तिका भार खुद उठाना चाहती है । इसके स्वीकार करनेमें हम कोई आपत्ति नहीं देखते ।"

इसके नीचे सिपियो और गैरीवाल्डीके हस्ताक्षर थे ।

गिडिटोने अभियोगोंमें (ई) का वाक्य काट दिया और अपने हस्ताक्षर कर दिये । सिपियो चला गया ।

❀ ❀ ❀

बेंज़िलो लौटातो गिडिटोनें कहा—'शतरंज बंद करो । आओ कुछ खायें-पीयें ।'

'लैन्डलेडी' को बहुत ज़बर्दस्त आर्डर दे दिया गया । कई तरहकी शरावें और सब-कुछ प्रस्तुत हो गया ।

'गिडिटो, तुम शराव पीओगे ?' बेंजिलोने पूछा ।

हाँ-हाँ, सुनते हैं, इसमें बड़े गुण हैं ।' गिडिटोने जवाब दिया ।

दोनोंने जितना हो सका खाया और जितनी समा सकी शराब पी । फिर दोनों बदहोश सो गये ।

१३

मैरिथकी आयोजनासे शनिवारके रोज़ झीलकी सैरके लिए जानेका निश्चय हुआ है ।

खानेका सब सामान साथ है । आज गिडिटो बिल्कुल पीला पड़ा हुआ है; लेकिन हदसे ज्यादा प्रसन्न मालूम होता है । दो-तीन घण्टे झीलमें किश्तियोंसे सैर हुई । इस सारे कालमें एक मिनिट भी तो शायद ही चुप रहा ह । दुनिया-भर के क़िस्से-कहानियाँ, चुहलबाज़ियाँ उसे सूझ रही हैं । घड़ी-घड़ी पर उसे शराबकी आवश्यकता पड़ती है ।

बेंज़िलो इन बातोंसे झल्ला रहा है। बड़ी पैनी दृष्टि से वह इन बातोंको देख रहा है, और फिर-फिर कर मैरिथकी ओर देख लेता है।

मैरिथ चित्र-सरीखा अपना एक जैसा चेहरा लेकर सब हँसी खुशी में भाग ले रही है। क्या प्रलय उसके भीतर मच रही है,—कौन है जो उसे जान सकता है? न मालूम वह आज अपनी क़ब्र खोदने जा रही है या मुक्ति पाने जा रही है!

झीलके उस पार जंगल में अब आ गयें हैं। गिडिटो ने कहा—'बेंज़ी, देखो, हँसोगे नहीं तो में गुदगुदी मचा दूँगा।'

'क्या आज ही हँस लोगे?'

'और नहीं तो क्या रोज़-रोज़ हँसना मिलेगा?'

'ठीक है, शायद रोज़-रोज़ हँसना नहीं मिलेगा।'

'बेंज़ी, इस जंगलमें कोई हमारी आवाज़ नहीं सुनेगा। आओ, खूब हँस लें, फिर इकट्ठे रो लेंगे।'

'गिडिटो, तुम आज बिलकुल जानवर जान पड़ते हो।'

'जान पड़ता हूँ! बस! अरे, तुम्हें मालूम नहीं, मैं हूँ ही जानवर! लेकिन, कहता हूँ, रोज़-रोज़ नहीं रहूँगा।'

गिडिटो ने बहुत शराब पी ली थी। वह अब ऊटपटाँग बक रहा था। मैरिथनें कहा—'बेंजी इधर आओ। उन्हें अब आराम करने दो।'

बेंज़िलोने यह सुना, गिडिटोके आरामके प्रति मैरिथ की व्यग्र चिन्ता और उत्कण्ठा देखी, गिडिटो को देखा और फिरकर अपनी ओर देखती हुई मैरिथको देखा, और 'आता हूँ, कहकर गिडिटो पर पिस्तौल तान दी। पर छोड़े-ही-छोड़ें कि एक गोली उसकी छाती में लगी। वह ढह पड़ा। उसकी गोली हवा में सन्-सन् करती हुई निकल गई।

बेन्ज़िलो कुछ भी बोल न सका। बात-की-बातमें निष्प्राण हो गया। गिडिटो ने आगे बढ़कर, उसी ज़िद्दी बालोंकी लटको हटाकर, बेंज़ी के माथे पर एक चुम्बन ले लिया। कहा—'मैरिथ, अब उसे उठाओगी नहीं?'

मैरिथ डर रही थी, गिडिटो न जाने क्या हो रहा था!

१४

चर्चके घेरेकी ज़मीन में एक बहुत गहरा गड्डा खोदकर बेंजोकी लाश उसमें रक्खी गई। फावड़े से गीली-गीली मिट्टी उसपर डाली गई। ८ फीट ऊँची ४ फीट चौड़ी और ८ फुट लम्बी वह जगह मिट्टी से ऊपर तक भर दी गई।

समितिके सब सदस्य आये थे, और अब चले गये। किसी ने उस पर एक आँसू न बहाया।

गिडिटो मुँह लटकाये खड़ा था—जैसे उसकी आँखों में का पानी और बदन में का खून सब सूख गया है।

बस, मैरिथ रो रही थी। बेचारे मृत बेंजोके लिए नहीं किन्तु बेचारे जीवित गिडिटोके लिए।

सबके चले जाने पर गिडिटोने आगे बढ़कर उस कब्र पर ताज़ी-ताज़ी पड़ी हुई मिट्टीका एक चुंबन ले लिया। पास से एक फलको तोड़कर उसके सिरहाने रख दिया। और गर्दन लटकाये हुए एक तरफ़ को बढ़ चला।

मैरिथ पीछे लपकी—चिल्लाई—

'गिडिटो!'

'हाँ'—यह हाँ जैसे उसी क़ब्र में से निकल रही थी।

'कहाँ जाते हो?'

'घर'

'मेरे यहाँ नहीं?'

'नहीं।'

मैरिथ भी इस पर वैसा ही मुंह लटकाए दूसरी तरफ़ चल दी।